# बालोपदेश

लेखक
रामनारायण मिश्र
काशी

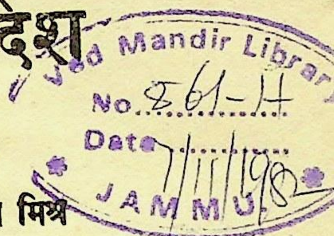
भूमिका-लेखक
लक्ष्मणनारायण गर्दे



काशी नागरीप्रचारिणी सभा

रुक्मिणीदेवी ग्रंथमाला—३

# बालोपदेश




लेखक

रामनारायण मिश्र

काशी



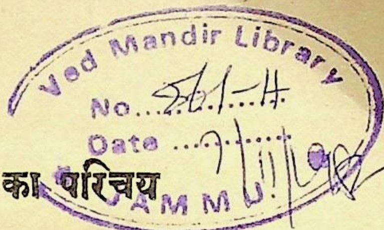
संशोधित और परिवर्द्धित

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

पंचम संस्करण ] संवत् २००४ वि० [ मूल्य

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्रथम | सं० | १००० | सरस्वती सदन, इंदौर, सन् | १९१६ |
| द्वितीय | ,, | १००० | ,, ,, ,, | |
| तृतीय | ,, | १००० | लहरी प्रेस, काशी | १९२३ |
| चतुर्थ | ,, | १००० | प्रभाकर प्रेस मथुरा, | १९३८ |
| पंचम | ,, | २००० | नागरीप्रचारिणी सभा, काशी | १९४७ |

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
मुद्रक : श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।




## माला का परिचय

सभा के बहुत पुराने सदस्य, अजमेर के स्वर्गवासी रायसाहब पं० चंद्रिकाप्रसाद तिवारी की सुपुत्री श्रीमती रामदुलारी दुबे ने अपनी स्वर्गीया माता श्रीमती रुक्मिणी देवी की स्मृति में उनके नाम से महिलाओं और शिशुओं के लिये उपयोगी पुस्तकों की एक माला प्रकाशित करने के निमित्त २०००) सभा को प्रदान किया है। इस माला में मौलिक कथा-कहानी, यात्रा, जीवन-चरित, स्वास्थ्य-रक्षा, सुबोध विज्ञान, सामाजिक विषयों के ग्रंथ, आर्ष-विषयों के बालोपयोगी संस्करण तथा गृहशास्त्र, मातृत्व और लैंगिक विषयों की वैज्ञानिक स्त्रियोपयोगी रचनाएँ आदि प्रकाशित की जायँगी। माला से होनेवाली आय इसी की संपुष्टि में लगाई जायगी। आशा है इस कार्य में सभा को योग्य विद्वानों का सहयोग सुलभ होगा और माला के उद्देश्यों की पूर्ति में उसे सफलता मिलेगी।

---

## वक्तव्य

५ फरवरी, १९१३ से काशी के हरिश्चंद्र स्कूल में ( जो अब कालेज हो गया है ) यह प्रथा आरंभ की गई थी कि काम आरंभ करने से पहले लड़कों को एक जगह जमा करके प्रतिदिन कुछ उपदेश दिया जाय। यही प्रथा काशी के सेंट्रल हिंदू-स्कूल में भी १९२३ से आरंभ हुई।

उस समय के पुराने छात्र, जो अब अनेक प्रकार से मातृभूमि की सेवा कर रहे हैं, मुझे समय समय पर देश-विदेश में मिले हैं जिन्हें इन उपदेशों ने सांसारिक प्रलोभनों से बचाया है।

उनमें से कुछ उपदेश परिवर्तित रूप में 'नवजीवन', 'नवनीत', 'बालहितैषी', 'स्त्रीदर्पण', 'क्षत्रियमित्र', 'गृहस्थ', 'हिंदू स्कूल पत्रिका', 'सात्विक जीवन', 'मानवधर्म', आदि पत्रों में प्रकाशित हुए थे और अब इस पुस्तक में एकत्र संगृहीत हैं। गत जून मास में ज्वालापुर ( हरिद्वार ) स्थित सत्यज्ञान-निकेतन में एकांत मिलने पर पं० लालजीराम शुक्ल

का स्नेहपूर्ण सहयोग प्राप्त कर मैंने इस पुस्तक को फिर दोहराया। इसके लिये मैं श्री शुक्ल जी का आभारी हूँ।

जिस समय हरिश्चंद्र स्कूल में ये व्याख्यान चल रहे थे मित्रवर पं० लक्ष्मणनारायण जी गर्दे मेरे सहयोगी अध्यापक थे। उनके आध्यात्मिक जीवन में सैकड़ों उपदेशों का बल है। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की जो कृपा की है उसने अतीत की स्मृति जगा दी है। एतदर्थ मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

रामनारायण मिश्र।

# भूमिका

श्रद्धेय पण्डित रामनारायण मिश्र की इस 'बालोपदेश' पुस्तिका के साथ मेरा भी यह लेख छपे, इसे मैं अपने लिए गौरव की बात समझता हूँ। जो उपदेश इस पुस्तक में हैं वे हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के छात्रों को जब क्रम से दिये जा रहे थे तब मैं भी श्रद्धा के साथ इन्हें सुना करता था। पण्डित रामनारायण मिश्र उस समय हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक थे। मैं भी अध्यापकों में से ही था, पर इन उपदेशों को श्रवण करने में मुझे जो आनन्द आता था वह यह बात भुला देता था कि मैं अध्यापक हूँ। मुझे आनन्द आता था, छात्रों के हृदय के साथ अपना हृदय मिलाकर इन उपदेशों को सुनने में ही, और मैं यह भी अनुभव करता था कि छात्रों के साथ मेरा भी जीवन इन उपदेशों से बन रहा है। काशी के सार्वजनिक जीवन-क्षेत्र में सच्चे हृदय से काम करनेवाले जिन व्यक्तियों का मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा होगा उनमें से एक पण्डित रामनारायण मिश्र हैं और दूसरे माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी जो इस समय युक्तप्रदेश के शिक्षा मंत्री हैं और जिस समय की मैं बात कह रहा हूँ उस समय जो हम लोगों के साथ ही हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के एक अध्यापक थे। मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे मित्र बाबू सम्पूर्णानन्द जी भी इन बालोपदेशों को बहुत ध्यान से सुनते थे और कभी कभी स्वयं भी ऐसे ही उपदेश दिया करते थे।

इन उपदेशों ने उन छात्रों का जीवन बनाने में कितना बड़ा काम किया, यह स्थूल रूप से हिसाब फैलाकर देखने का कोई साधन नहीं है। पर इसमें सन्देह ही क्या है कि यदि जीवन में सदाचार ही सब से बड़ी चीज और सब उन्नतियों का आधार है तो स्कूलों में दी जानेवाली शिक्षा में सब से ऊँची चीज यही है जो इन उपदेशों में भरी हुई है। हरिश्चन्द्र हाईस्कूल की शिक्षा पण्डित रामनारायण मिश्र के प्रधान अध्यापक रहते हुए इन्हीं उपदेशों से आरंभ होती थी। शिक्षा क्रम में ऐसे उपदेशों का स्थान सब से पहला होना ही चाहिये।

इन उपदेशों की यह विशेषता है कि इनकी भाषा अत्यंत सरल है और सीधे हृदय को स्पर्श करनेवाली है। उदाहरण भी छात्रों के नित्य जीवन में सदा सामने रहनेवाली चीजों से ही लिये गये हैं जिनसे मर्म को समझने में छात्रों के लिए कोई कठिनाई नहीं होती। मैं शिक्षा विषय का विशेषज्ञ नहीं हूँ, इसलिए अधिकार के साथ कोई बात नहीं कह सकता। पर विविध शिक्षा क्रमों को देखते हुए जो चीज अनायास ही मेरे विचारों का केन्द्र बनती है वह सब तरह दिमागी शिक्षाओं के बीच हृदय की शिक्षा का भी कोई प्रबन्ध है या नहीं यही देखा करती है। मेरा यह ध्यान है कि मानव जीवन का केंद्र हृदय है और हृदय यदि स्वस्थ है तो जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों में स्वस्थता आये बिना नहीं रह सकती। सब शिक्षाओं के रहते हुए भी यदि हृदय की शिक्षा का कोई ध्यान न हो तो 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' जैसी स्थिति का प्रदर्शन कोई असंभव बात नहीं है। सदाचार की शिक्षा का आधार

दिमाग की अपेक्षा हृदय ही प्रधानरूप से है। स्वाधीन हिन्द के हमारे स्कूल-कालेजों में इस शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। सदाचार की ऐसी शिक्षा ऐसे हृदयग्राही उपदेशों से ही अनायास मिलती है और ये उपदेश उन्हींके अमोघ होते हैं जिनके अपने जीवन वैसे ही पहले से निर्मित हो चुके रहते हैं। ऐसे पुरुष कम होते हैं। ऐसे अमोघ उपदेश भी अतः कम। ये बालोपदेश जो इस पुस्तक में हैं, ऐसे ही अमोघ हैं। इन उपदेशों की भूमिका सभी बालकों के हृदय हैं। यह हर बालक के लिए अपने हृदय की वस्तु है। यह उनके पास पहुँच जानी चाहिये—स्कूलों में और स्कूलों के बाहर भी।

पण्डित रामनारायण मिश्र शिक्षा विषय के विशेषज्ञ हैं। सारा जीवन उनका अध्यापन और छात्रों की शिक्षा के प्रबन्ध में ही बीता है। यह उनकी विशेष देन है जिससे हम सभी उपकृत होंगे।

लखनऊ-नवजीवन }

**लक्ष्मण नारायण गर्दे**

# विषय-सूची

---

# बालोपदेश

## ( १ )

## चूहेदानी

[ होनहार बालक छोटी-छोटी चीजों से शिक्षा लेते हैं। दत्तात्रय महाराज के चौबीस गुरु थे। उन्होंने जानवरों से भी शिक्षा ग्रहण की थी। हम यदि शिक्षा लेना चाहें तो शिक्षकों की कमी नहीं है। संसार की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना से स्वतः शिक्षा मिलती है। उसे प्राप्त करने के लिये हृदय की आँख खुली रखनी चाहिए। ]

लड़कों ने चूहेदानी अवश्य देखी होगी। यह पिंजरे की तरह होती है। इसके अंदर जाने का एक दरवाजा होता है। अंदर रोटी का टुकड़ा छत से लटका रहता है। चूहा अपने बिल से निकला, उसको रोटी की सुगंध मालूम हुई, वह पिंजरे के अंदर गया, रोटी में मुँह लगाया और पिंजरे का खटका गिरा। बस दरवाजा बंद हो गया और वह कैद हो गया। अब जिस रोटी के लोभ से वह अंदर

गया था वह उसको बुरी लगती है और वह बाहर आने के लिये तड़पता है। इसी प्रकार संसार में बालकों के लिये भी अनेक फंदे पड़े हुए हैं जिनमें वे अनजाने फँस जाते हैं और अंत में उनका निकलना कठिन होता है। बाग की सैर करने गए; किसी दोस्त ने कहा, "सिगरेट पिओ"। "एक फूंक ही सही", "कितना मजा है", "कौन देखता है"। बस आ गए कहने में, पड़ गई चुरट पीने की आदत। अब पैसा कहाँ से आए? झूठ बोलकर दयावती माता से पैसा माँगा। धीरे-धीरे चोरी की आदत पड़ी, बस अब तो पिंजरे में फँस गए। निकलना चाहते हैं, निकल नहीं सकते। इसी तरह से चूरन खाने की चाट, थियेटर देखने की लत, आपस में गाली बकने की बान ये सब चूहेदानी में फँसने का फल है।

मछली पकड़नेवाला एक लंबी लकड़ी लेता है। उसमें रस्सी बाँधता है, रस्सी के किनारे लोहे की आँकड़ी में आटा फँसा देता है और उसको पानी में डुबा देता है। मछली धीरे से आकर आटे को छूते ही पीछे हट जाती है। फिर आती है। दो तीन बार ऐसा ही करती है। तब आटे को खाने के लिये मुँह खोलती है और लोहे की आँकडी में फँस जाती है। इसी प्रकार संसार की बुरी आदतें हैं। पहिले लोग डरते हुए शुरू करते हैं—"कहीं माँ

न देख ले", "कहीं मास्टर साहब न देख लें ।" धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है और लोग फिर निर्लज्ज होकर पाप करने लगते हैं ।

बालकों को चाहिए कि सदा चैतन्य रहें, उनके चारों तरफ पिंजरे हैं, उनमें फँसने से बचने का वे सदा प्रयत्न करते रहें ।

---

( २ )

## सड़ा बेर

लड़कों को बेर खाने का बड़ा शौक होता है । उन्होंने देखा होगा कि जो बेर सड़ जाते हैं, उनमें कीड़े पड़ जाते हैं । सड़े हुए बेर में बाहर ही छोटा-सा छेद दिखाई देता है और एक काला निशान । जो बेर नहीं सड़ते वे बहुत सुंदर सुडौल होते हैं । उनकी शकल और उनका रंग देखकर मालूम हो जाता है कि उनके खाने से किसी रोग का डर नहीं । इसी तरह सड़ी हुई नाशपाती या सड़ा हुआ सेब अपने सड़ जाने का परिचय ऊपरी रूप रंग से ही दे देता है । अब प्रश्न यह उठता है कि सेब के अंदर कीड़ा कैसे पहुँचा । पौधों की ठीक रखवाली न करने से उनमें कीड़े लग जाते हैं । ये कीड़े वायु में उड़ा करते हैं ।

अपने योग्य स्थान पाकर वे तुरंत डेरा जमा लेते हैं और पेड़ों तथा फलों को बिगाड़ देते हैं। जिस प्रकार कीड़ेवाले और बिना कीड़ेवाले फल आसानी से पहचान लिए जाते हैं, उसी प्रकार बुरे और भले लड़के पहचाने जाते हैं। कीड़ेवाले बेर के बाहर जैसे काला दाग और छेद होता है उसी तरह बुरे लड़के के चरित्र में छेद होते हैं और काला दाग रहता है। बात बात में झूठ बोलना, हर वक्त शिकायत करना, माता-पिता और गुरु की परवाह न करना, मुँह पान से खूब भरकर स्कूल आना, चाल-ढाल, पहरावा, बदमाशों की तरह रखना, ये सब बाहरी चिह्न हैं जिन्हें देखकर तुरंत मालूम हो जाता है कि इन अवगुणों का रखनेवाला बालक बुरा है। जिस तरह सुंदर सुडौल बेर को हर एक आदमी प्रसन्नतापूर्वक खा लेता है और उसमें कीड़े का संदेह मात्र भी नहीं होता उसी प्रकार नीची आँख रखनेवाला, धीरे बोलनेवाला, समय पर काम करनेवाला बालक सब को प्रिय मालूम होता है। याद रखो, बाल्यावस्था में असावधानी करने से चरित्र सदा के लिये कलंकित हो जाता है। इस समय अपने माता-पिता और गुरु के बताए हुए मार्ग पर ही चलकर बालक शुद्ध चरित्र और उच्च विचारवाले हो सकते हैं।

---

( ३ )

## खोटा पैसा

पैसा भी बड़े काम की चीज है। इसी के द्वारा वस्तु मोल ली जाती है और बेची जाती है। बाजार गए, पैसा दिया, मनमानी वस्तु ले आए। प्रत्येक वस्तु जितनी उत्तम होती है उतनी ही मूल्यवान् होतो है। एक चीज पैसे की मिलती है, दूसरी रुपए को। जब रुपया-पैसा दूकानदार को दिया जाता है, तब वह ठोक-बजाकर देख लेता है कि सिक्का असली है या बनावटी। किसी किसी को तो सिक्का परखने का इतना अभ्यास होता है कि वह आँख बंद करके सिक्के को हाथ से टटोलकर बतला देता है कि खोटा है। कहीं कहीं बंकों में एक कल रहती है, जिससे असली और खोटे सिक्के की जाँच की जाती है। जहाँ दूकानदार ने जाना कि सिक्का खोटा है, वह उसको नहीं लेता और अपनी वस्तु नहीं बेचता। खोटे सिक्के की कहीं पूछ नहीं होती। हाँ, सीधे-सादे आदमी धोखे में आकर उसे ले लेते हैं और फिर पछताते हैं, क्योंकि खोटा रुपया या पैसा बहुत दिनों तक छिपा नहीं रह सकता।

इसी प्रकार संसार में असली सिक्के की तरह वे लोग हैं जो दिल से सच्चे हैं और खोटे सिक्के की तरह वे जो बने हुए हैं। स्कूल में कई लड़के ऐसे होते हैं कि जहाँ दरजे से मास्टर साहब हटे, उन्होंने उत्पात मचाना आरंभ कर दिया, पर मास्टर को लौटते देखकर ऐसे चुप बैठ जायँगे मानो उनके न रहने पर भी वैसे ही बैठे थे। और सुनिए, अध्यापक ने प्रश्न किया और कहा, "जो लोग इस प्रश्न का उत्तर जानते हैं, हाथ उठावें"। दो-एक लड़के यों ही हाथ उठा देते हैं। समझते हैं कि यदि हम से प्रश्न का उत्तर न पूछेंगे तो हाथ उठाने के कारण हम भी अच्छे बालकों में गिने जायँगे। पर सच्ची बात कब तक छिप सकती है। जिस दिन कलई खुल जाती है उस दिन पूरी दुर्गति होती है। ऐसे "बगुला भगत" खोटे सिक्के की नाईं हैं। सीधे- सादे आदमी को ये लोग दो-एक बेर धोखा भले ही दे दें पर अनुभवी पुरुष इन्हें देखकर पहचान लेते हैं। सच्चे को झूठा कहिए, देखिए उसकी कांति, उसका मुख। बनावटी आदमी का झूठ जहाँ पकड़ा गया, वह काँप जाता है, गिड़गिड़ाने लगता है, उसके मुख पर तेज नहीं रहता। बस इसी तरह ठोक-बजाकर असली और खोटा सिक्का परख लिया जाता है। हम सब लोगों को बनावटी रूप नहीं रखना चाहिए। हमारी सब बात शुद्ध, पवित्र और

निर्मल होनी चाहिए, तब असली सिक्के की तरह सब लोग हमको अपनाएँगे और संसार की उन्नति होगी।

---

( ४ )

## पेड़ में अंक

सड़कों पर सरकार, म्यूनिसिपिल या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तरफ से पेड़ लगाए जाते हैं, जिनसे रास्ता चलनेवालों को छाया मिलती है। इनमें फल लगते हैं तो बेच दिए जाते हैं। अगर कोई पेड़ सूख जाता है तो उसे काटकर उसकी जगह दूसरा पेड़ लगाया जाता है। इन सब बातों के लिये जरूरी है कि पेड़ों का नंबर मालूम रहे जिसमें दफ्तर से इसका इंतजाम होता रहे। अगर इन पेड़ों पर लोहे की तख्तियाँ लगाई जाएँ तो उनको लोग उखाड़ लेंगे या वे गिर जाएँगी। इसलिये थोड़ी सी छाल उतारकर पेड़ ही पर गहरा अंक खोद दिया जाता है। ज्यो ज्यों पेड़ बढ़ता है, वह अंक भी बढ़ता जाता है, यह मिटाने पर मिट नहीं सकता। पेड़ के सूख जाने पर भी यह रहता है। जब तक लकड़ी जला न दी जाय, यह मिटता नहीं। यही हाल हमारा है। जो विचार हमारे अंदर बचपन में डाल

दिए जाते हैं वे ऐसे अमिट हो जाते हैं कि जन्म भर नहीं भूलते। इँगलिस्तान के प्रसिद्ध लेखक और कवि स्काट की माँ और दादी बचपन में उसको बैलेड्ज़ ( एक प्रकार के गीत ) सुनाया करती थीं। समय पाकर स्काट अपने देश का बैलेड्ज़ गीतों का प्रसिद्ध कवि हो गया।

एक लड़के की माँ एक विद्वान से पूछने गई कि उसको अपने चार वर्ष के बालक की शिक्षा कब से आरंभ करनी चाहिए। विद्वान् ने उत्तर दिया "माता! शिक्षा के ४ वर्ष तो यों ही व्यर्थ खो दिए!" सच है, शिक्षा उसी दिन से आरंभ होती है जिस दिन से बच्चा जन्म लेता है। इसी को संस्कार कहते हैं। सात वर्ष से नीचे के बच्चे में आश्चर्य की मात्रा अधिक रहती है। कुत्ते को भूँकते देखकर वह ठहर जाता है, अपनी छाया देखकर वह उसके पीछे दौड़ता है। इसी तरह उसका ज्ञान बढ़ता है। प्रतिदिन वह नए आविष्कार करता है। सात वर्ष के ऊपर उसमें युक्ति का प्रादुर्भाव होता है और एक प्रकार की आकांक्षा उत्पन्न होती है। सड़क पर पानी छिड़कने की गाड़ी देखकर वह सोचने लगता है कि पानी कहाँ से आता है। उसकी इच्छा होती है कि गाड़ी पर सवार होकर उसके पानी पर अपना साम्राज्य जमावे। स्टेशन पर जब रेल खड़ी रहती है तब बड़ा कोलाहल होता है। कोई उतरता

है, कोई चढ़ता है, कहीं असबाब उतारा जाता है, कहीं लादा जाता है। रेल के चलने का वक्त हुआ, अगर आप के साथ इस अवस्था का बच्चा है तो ध्यान से देखिए, भीड़-भाड़ में उसकी दृष्टि रेल के गार्ड की तरफ जायगी जो सीटी बजाकर चलती रेल में चढ़ जाता है। उसके मन में यही आएगा कि बस रेल के चलाने की कुंजी उसी सीटी बजानेवाले के हाथ में है। उससे अपने घर के पुरुषों की कथा कहिए तो ध्यान से सुनेगा, उसको नगर के प्रसिद्ध स्थान दिखाइए तो उत्साह से देखेगा। इतिहास-भूगोल के ज्ञान की नींव इसी समय पड़ती है। जो संस्कार इस समय पड़ जाते हैं वे सदा बने रहते हैं। मनुष्य के जीवन का यह भाग बड़े महत्त्व का है।

---

( ५ )

## पिंजड़े की चिड़िया

श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक सुंदर आख्यायिका में लिखा है कि पिंजरे में बंद एक चिड़िया और जंगल में विचरनेवाली स्वाधीन चिड़िया में एक बेर इस प्रकार बातें होने लगी।—

स्वाधीन चिड़िया—"चलो बन की ओर उड़ चलें ।"

पिंजड़े की चिड़िया—"आओ पिंजरे में दोनों मिल कर रहें ।"

स्वाधीन चिड़िया—"पिंजड़े में पर फैलाने की जगह नहीं है ।"

पिंजड़े की चिड़िया—"आकाश में बैठने की जगह नहीं है ।"

स्वाधीन चिड़िया—"बन और उपवनों में हम दोनों मिलकर गीत गावेंगे ।"

पिंजड़े की चिड़िया—"मैं यहाँ भक्तों के भजन सिखाऊँगी ।"

इस प्रकार दोनों एक दूसरे को पिंजड़े के छेदों में से देख रही थीं और कह रह थीं। "प्यारी और पास आओ" अंत में पिंजरे की चिड़िया ने कहा—

"हा ! मेरे तो पर शक्ति-हीन हो गए हैं; वे तो मुरदे के समान हैं ।"

जीवन में सादी चाल चलनेवाले उस चिड़िया के समान हैं जिसको वन और उपवनों में सब जगह उड़ने को मैदान मिल जाता है। उसके पर मजबूत होते हैं। अमीरी चालवाले पिंजड़े की चिड़िया की तरह बंद हैं, जिसके पर काम नहीं दे सकते ।

एक लड़का स्कूल में नौकर के साथ आता है। उसका बस्ता पीछे पीछे नौकर उठाए चलता है। उसके साथी अपनी किताबें आप लाते हैं। एक दिन नौकर बीमार पड़ जाता है। अब मुश्किल हुई, किताबें उठाकर कौन ले चले। "पैदल भी चलें और किताबें भी उठावें। एक दिन स्कूल न गए तो न सही।"

दूसरा लड़का गाड़ी पर स्कूल आता है। बहुत से लड़के उससे भी दूर से पैदल चलकर आते हैं। एक दिन गाड़ी खाली नहीं है। लड़का स्कूल में अर्जी लिखकर भेज देता है कि आज गैरहाजिरी माफ की जाए। दूर से आनेवाले लड़के समय से पहले आते हैं और कभी नागा नहीं करते।

एक आदमी अपने खाने में खूब मिर्च मसाला डालकर उँगलियाँ भी चाटकर खाता है। दूसरा रूखा-सूखा जो मिला, खा लेता है, मिर्च मसाले से परहेज करता है। बतलाओ, दोनों में से विपद के समय कौन सुखी रह सकता है?

सादी चाल सदा काम आती है। कभी चारपाई न मिली तो जमीन या चौकी पर ही सो गए। शानदार कपड़े पहनने और मसालेदार भोजन करनेवालों में कबीर और डा० बोस नहीं पैदा हो सकते। गौतम बुद्ध को भी

धर्मप्राप्ति से पूर्व राजकीय ठाट बाट को तिलांजलि देनी पड़ी थी। देवेंद्रनाथ ठाकुर बड़े धनाढ्य पुरुष थे। महलों में रहते थे। परंतु ईश्वर में प्रेम था। उपासना के समय गदगद हो जाते थे। एक बार वे हिमालय पर्वत पर गर्मी के कष्ट से बचने के लिये सैर करने गए। वहाँ भी एक सुंदर भवन में ठहरे, जहाँ से पर्वत की अद्भुत छटा दिखाई देती थी। एक दिन ईश्वर के ध्यान में निमग्न हो गए। आँख खुली तो दृष्टि एक दूरवर्ती नदी पर पड़ी, जो पहाड़ से उतरकर मैदान में बहती हुई दिखलाई दे रही थी। उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान आज्ञा दे रहे हैं कि "तू भी इस नदी की तरह नीचे चल और अपने भाइयों की सेवा कर; पहाड़ से नदी नीचे आकर खेतों को सींचती है, प्यासों की प्यास बुझाती है, व्यापार की उन्नति का साधन बनाती है।" महलों में रहनेवाले देवेंद्रनाथ ने तुरंत पहाड़ छोड़ दिया, सादा जीवन ग्रहण किया और धर्म की इस प्रकार सेवा की कि बंगाल में सब लोग उनको महर्षि के नाम से याद करते हैं। उन्हीं महर्षि के सुपुत्र स्वनामधन्य गुरुदेव कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'शांति-निकेतन' की स्थापना की।

कबीर जी ने एक स्थान पर लिखा है कि मनुष्य के पास इतना धन होना चाहिए कि वह अपने आपको,

अपने परिवार को और अतिथि को भोजन-वस्त्र दे सके। धनाढ्य पुरुषों के लिये सादी चाल बहुत आवश्यक है। मनुष्य की अवस्था बदलते क्या देर लगती है। बड़े बड़े अमीर देखते देखते कौड़ियों के लिये मुहताज हो जाते हैं। ऐसी विपत्ति में उनकी जान निकल जाती है। विना नौकर के काम नहीं चलता। नौकरों को तनख्वाह देना मुश्किल हो जाता है।

एक राजा थे। उनके दिन बदल गए। सिर्फ खिताब रह गया। नौकरों की तनखाहें सिर पर चढ़ गईं। रुपया पास नहीं। तकादे पर तकादा जारी हो गया। उनको एक चाल सूझी। महीने में एक दिन घर पर कचहरी करने लगे। एक नौकर को बुलाते, उससे कहते कि तूने अमुक दिन यह काम बिगाड़ दिया, कल यह नुकसान किया, परसों बिना पूछे चला गया, इसलिये तुझ पर २०) जुर्माना। राजा साहेब को १५) तीन महीने के अभी देने ही हैं। एक महीने आगे की तनख्वाह जुर्माना। इस तरह पुराने नौकर भागने लगे। जो नए नौकर फँस जाते वह भी थोड़े दिनों में छोड़ भागते।

सादी चाल से यह मतलब नहीं है कि कपड़ा मैला है तो मैला ही सही। सादी चाल रखनेवाले जरूरत पड़ने पर अपना कपड़ा आप ही साफ कर सकते हैं, इसी तरह

खाना आप पका सकते हैं, अपनी गाय आप दुह सकते हैं, बाजार से अपनी चीजें आप खरीद कर उठा लाते हैं।

---

( ६ )

## सावधानी

[ छोटी छोटी बातों में जो सावधान रहता है वह जीवन में सदा सतर्क रहना सीख जाता है। ]

### (क) मँगनी की चीज मँगनी मत दो

मँगनी लेने का रवाज इस देश में बहुत है। मँगनी लेकर लोग भूल भी जाते हैं। मँगनी देनेवाला जब बहुत तकादा करता है, तब चीज मिलती है। कभी कभी चीज खराब हो जाती है, तो खराब चीज ही लोग लौटा देते हैं। मँगनी की चीज लोग खो भी देते हैं और फिर बहाना करने लगते हैं।

सिद्धांत तो यह होना चाहिए कि हम मँगनी की चीज ही न लें; परंतु सांसारिक व्यवहार में पुस्तकें, बर्तन, बिछौना आदि अपने या सार्वजनिक काम के लिये लेना ही पड़ता है। ऐसी अवस्था में जो चीज जैसी ली जाय, काम हो जाने पर बिना माँगे ही तुरंत वैसी ही लौटा दी

जाय। यदि खराब हो जाय, तो वैसी ही दूसरी चीज मोल लेकर लौटाई जाय या वही चीज ठीक कराके लौटाई जाय। इसमें लापरवाही न की जाय।

पर लापरवाही की पराकाष्ठा है—मँगनी की चीज मँगनी देना। जो चीज हम अपने नाम से माँग लाए, हमें कोई अधिकार नहीं है कि, हम उसे किसी दूसरे को मँगनी दें। दूसरे आदमी को यदि उसकी आवश्यकता हो, तो उसे चाहिए कि वह अपने नाम से असली मालिक से उसे माँगे। मँगनी की चीज मँगनी जाने लगती है, तो या तो उसकी दुर्गति हो जाती है या वह लापता हो जाती है। इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व कोई भी अपने ऊपर नहीं लेता। उत्तरदायित्व कोई लेगा भी क्यों? एक आदमी दूसरे का दोष बतलाता है। पर यथार्थ में दोष उसी का है जिसने चीज को पहले मँगनी लिया। इसलिये मँगनी की चीज को कदापि मँगनी न दो। गृहस्थ के लिये इस नियम का पालन आवश्यक है।

## (ख) मेहमान के मेहमान मत बनो

हमारे एक पड़ोसी के यहाँ कुछ मेहमान ठहरे हुए थे। मेहमान के एक दोस्त अपना बोरिया-बिस्तर लेकर उनके पास आए और कहने लगे कि हम भी आपके साथ

ही ठहरेंगे। 'न जान न पहचान, हम तुम्हारे मेहमान'। गाँव की बात हो तो पेड़ के नीचे ही चारपाई बिछा लें, चना-चबैना ही खा लें। शहर की बात, स्थान की कमी, भोजन की सामग्री की कमी, पकानेवालों को कष्ट। अतिथि सत्कार के लिये भारत प्रसिद्ध है। घर में जगह हो या न हो, प्रत्येक भारतीय के हृदय में, जैसा कि इस शब्द से प्रगट है, अ-तिथि के लिये सदा जगह रहती है। पर जो अतिथि बनने जाता है, उसको भी तो विवेक से काम लेना चाहिए। गृहस्थ के घर में तो मेहमान भरे हैं और हम मेहमान के भी मेहमान बनकर उसी घर में जाकर ठहरने की चेष्टा करें, यह ठीक नहीं है। शिष्टाचार जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्था से संबंध रखता है। स्वास्थ्य-संबंधी शिष्टाचार, व्यापार-संबंधी शिष्टाचार, साधारण व्यवहार-संबंधी शिष्टाचार का हमें सदा पालन करना चाहिए। अन्यथा हम स्वयं तो कष्ट पाएँगे ही, दूसरों के कष्ट का भी कारण होंगे।

## (ग) जिधर चलो उधर देखो

सड़क पर चलना भी एक जानने योग्य आवश्यक कला है। हमारे देश में लोग मनमानी चाल चलते हैं। कोई छड़ी हिलाता चलता है, तो कोई चलते चलते एकाएक सड़क के बीच में खड़ा होकर बातें करने लगता

है। लोग समझते हैं, भला सड़क पर चलने में भी नियमों की क्या आवश्यकता है? वर्तमान साक्षर देशों में इस बात की शिक्षा छोटी उम्र में ही दी जाती है कि बाएँ चलो या दाहिने, छाता या छड़ी हाथ में कैसे रखो, इत्यादि। यहाँ तत्संबंधी कुछ आवश्यक नियमों का उल्लेख किया जाता है। नियम तो छोटे हैं; परंतु असाधारण महत्त्व के हैं।

जो आदमी इस नियम का पालन करता है, वह सतर्क रहता है और खतरे में नहीं पड़ता। यदि चलने-वाला पैर आगे रखता चले और बार-बार पीछे या दाहिने बाएँ गर्दन मोड़ता चले, तो ठोकर खा सकता है, किसी दूसरे चलनेवाले से टक्कर खा सकता है या चलनेवाली गाड़ी के नीचे दब सकता है। ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं।

यह नियम जितना पैदल चलनेवाले के लिये आवश्यक है उतना ही उसके लिये भी, जो पैरगाड़ी या अन्य कोई सवारी चला रहा हो। घोड़ा-गाड़ी और मोटर चलाने-वालों के लिये इस नियम का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। कभी-कभी घोड़ा-गाड़ी या मोटर में बैठे हुए लोग कोचवान या ड्राइवर से बातें करते चलते हैं। यह बहुत ही बुरा है। कोचवान या ड्राइवर का ध्यान दूसरी तरफ हो जाने से, न मालूम क्या अनर्थ हो सकता

है। इसलिये ऐसी अवस्था में यदि कोचवान या ड्राइवर से कोई आवश्यक बात कहनी हो, तो एक या दो शब्दों में कह दो। अधिक बातें करनी हों, तो गाड़ी रोक दो।

हमारे एक जमींदार मित्र ने एक मोटर खरीदी। एक दिन उन्होंने अपने सोलह बरस के लड़के को, जो बड़ा बातूनी था, अपनी मोटर पर सैर करने के लिये किसी दूर के स्थान पर भेज दिया। उसके साथ उसका नौकर भी था। नौकर ड्राइवर के पास आगे बैठा, बबुआ पीछे बैठे। बीस मील जाना था। उस ओर की उनकी पहली यात्रा थी। रास्ते भर वे ड्राइवर से प्रश्न पूछते रहे और उसको बातचीत में लगाए रखा। रास्ते में एक मोड़ थी, ड्राइवर का ध्यान पीछे था। मोटर सड़क से उतर-कर एक खाईं में चली गई। सौभाग्य से किसी की जान नहीं गई; परंतु बबुआ साहब बहुत ज्यादा जख्मी हो गए। महीनों इलाज हुआ, सैकड़ों रुपए खर्च हुए तब अच्छे हुए। बात कुछ भी नहीं थी, केवल इस छोटे से नियम का उल्लंघन किया गया था; परंतु इतने में ही जान के लाले पड़ गए।

इस लेख को पढ़ने के बाद आप सड़क पर चलते हुए आँखें खोलकर देखते चलिए, तो आप पायँगे कि, जिस नियम का उल्लंघन उक्त बबुआ साहब ने किया, उसका

उल्लंघन पचहत्तर प्रतिशत लोग करते हैं। पैदल चलनेवाले, बाइसिकिल पर चलनेवाले और एक्का हाँकनेवाले इस अंश में सबसे बड़े दोषी हैं। हमारे देश में साधारण नियम है कि, सवारी गाड़ी अपनी बाईं ओर से चले। इससे आपस में टक्कर या मुठभेड़ नहीं होगी। राहगीरों और सवारी गाड़ी चलानेवालों को बहुत सावधान रहना आवश्यक है।

## (घ) सड़क पार करो तो दाहिने-बाएँ देख लो

यह नियम पहले नियम के विपरीत मालूम हो सकता है; परंतु यथार्थ में यह पहले नियम का सहायक है। इस नियम का उल्लंघन पहले नियम से भी बहुत अधिक होता है। लोग एक पटरी से उतरकर दूसरी पटरी की ओर जाने लगते हैं, तो यह नहीं देख लेते कि, दाहिनी या बाईं ओर से कोई सवारी आ रही है या नहीं। योरप में जब कोई पैदल चलनेवाला एक पटरी से दूसरी पटरी पर जाना चाहता है, तो सीधा ही जाता है, पर पहले दोनों तरफ देख लेता है। हमारे यहाँ दाहिनी पटरी पर चलनेवाले को यदि बाईं पटरी पर जाना है तो वह जल्दी से सीधा जाकर सड़क पार नहीं कर लेगा; बल्कि कुछ दूर सड़क पर ही चलकर कहीं दूर जाकर दूसरी पटरी पर हो लेगा। हमारे देश

में सवारियों की संख्या और सवारियों के प्रकार बढ़ते जा रहे हैं; परंतु सड़कों की संख्या और उनकी लंबाई-चौड़ाई उतनी ही है जितनी प्रायः बीस-तीस वर्ष पहले थी। मेरे बचपन में एक्का था और घोड़ा-गाड़ी थी। अब बाइसिकिल, मोटर-गाड़ी, लरी और रिक्शा चलने लग गया है; पर सड़कों की संख्या और चौड़ाई उतनी ही है, और उनकी हालत पहले से भी खराब है। पटरियों की दुर्दशा का वर्णन करना व्यर्थ है। उनपर कहीं कंकड़ पड़े रहते हैं, कहीं दूकानें लगी रहती हैं। नतीजा यह होता है कि पैदल चलनेवाले लोग भी सड़क पर ही चलना पसंद करते हैं। ऐसी अवस्था में और भी आवश्यक है कि हम सड़क पर चलने के नियमों का पालन करना सीखें।

---

( ७ )

## सीधी और टेढ़ी अंगुली

एक अंधे और गूँगे से किसी ने पूछा कि झूठ और सच में क्या भेद है। वह अनुभवी पुरुष था, उसने एक हाथ से सीधी उँगली दिखला दी और दूसरे हाथ से टेढ़ी

उँगली। संकेत से उसने बड़ी गंभीर बात बतलाई। सत्य सीधी उँगली की तरह है। सच्ची बात के तोड़ने-मरोड़ने की जरूरत नहीं। जैसी है, वैसी ही बेखटके कह दो। झूठी बात टेढ़ी उँगली की तरह है; जैसे सीधी उँगली को टेढ़ी करना पड़ता है, वैसे ही झूठ बोलने के लिये सच को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है; जो असली बात है उसको बदलना पड़ता है। सच्चा आदमी निर्द्वंद्व, निडर और स्थिर रहता है; झूठा आदमी सदा डरा करता है। उसकी आत्मा निर्बल है। हमको अपना असली स्वरूप बदलने की आवश्यकता नहीं। सदा सच्ची बात कह दो और देखो, चरित्र पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

---

( ८ )

## सत्य भाषण[1]

इस स्कूल के सब लड़के क्षत्रिय हैं। इतिहास से मालूम होता है कि प्राचीन काल में हमारे देश के क्षत्रिय बड़े बहादुर और सत्यवादी होते थे। उनके हाथ में तल-

---

१. बनारस के क्षत्रिय हाई स्कूल में यह लेख १३ जनवरी, सन् १९१३ ई० को स्वर्गीय भिनगा-नरेश राजा उदयप्रताप सिंह के आग्रह से पढ़ा गया था।

वार रहती थी और जुबान पर सच्चे वचन। रामायण, महाभारत और इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरे हैं। उन्होंने अपनी बात रखने के लिये बड़े-बड़े कष्ट सहे, बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ झेलीं। हमें देखना है कि इस समय हम लोगों में कहाँ तक "सत्य" का प्रयोग होता है। घर-गृहस्थी में, दूकानों पर, साधारण व्यवहार में, हम लोग सत्य पर कितना चलते हैं।

पाठशाला में सैकड़ों लड़के पढ़ते हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि यहाँ क्यों आए, तो सब यही जवाब देंगे कि विद्या प्राप्त करने। यदि फिर उनसे प्रश्न किया जाय कि विद्या क्यों प्राप्त करते हो, तो भिन्न-भिन्न लड़के भिन्न-भिन्न उत्तर देंगे। कोई कहेगा कि रियासत और गृहस्थी का काम भली भाँति सँभालने के लिये। अधिकांश लड़के कहेंगे कि हम लोग नौकरी के लिये पढ़ते हैं। परंतु शायद ही कोई होनहार बालक खड़ा होकर यह कहेगा कि मेरी विद्या-प्राप्ति ज्ञान की वृद्धि के लिये है। ज्ञान ही के द्वारा सत्य की खोज होती है। हम सब लोग स्कूल में सत्य के अनुसंधान का मार्ग ढूँढ़ने के लिये आए हैं। यहाँ हमको सृष्टि के वे सिद्धांत बतलाए जाते हैं, जो अटल हैं। छोटे छोटे बच्चे पढ़ते हैं कि

१ + १ = २

१ + २ = ३

१ + ३ = ४

१ + ४ = ५ इत्यादि

या जब वे पहाड़ा पढ़ने लगते हैं तब उनको बतलाया जाता है कि

२ × १ = २

२ × २ = ४

२ × ३ = ६

२ × ४ = ८

२ × ५ = १०...इत्यादि

जब वे ऊपर के दर्जे में जाते हैं तब उनको विज्ञान द्वारा प्रकृति के नियम बतलाए जाते हैं। वे पढ़ते हैं कि हमारी पृथ्वी ३६५ दिन में सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी हिसाब से हम लोग अपना वर्ष गिनते हैं। इसी ज्ञान के द्वारा हम लोग काल के विभाग महीना, सप्ताह, दिन, घड़ी और पल में करते हैं। इसी के द्वारा हम अपने त्योहार मनाते हैं। यदि हमको ठीक-ठीक यह न मालूम होता कि पृथ्वी कितने समय में एक बार सूर्य के चारों तरफ घूम आती है तो हमको इतवार की छुट्टी और दशहरे पर मिठाई न मिलती।

अब मान लो कि कोई आदमी हमसे आकर कहे कि पाताल में एक ऐसा देश है जहाँ २+२=५ और ४×२=९ होता है, तो हम उसको क्या कहेंगे। हम उसकी बात का विश्वास न करेंगे क्योंकि वह जो कहता है वह ठीक हो ही नहीं सकता। फिर यदि हमें कोई आकर कहे कि "अजी, इस बार पृथ्वी ने चाल कुछ तेज कर दी थी इसलिये वह ३६५ दिन की जगह सिर्फ ३०० दिन में हो सूर्य के चारों तरफ हो आई और अब कुछ विश्राम कर रही है" तो आप तुरंत कहेंगे कि ऐसी बात कहने-वाला मूर्ख है।

इन उदाहरणों से आप को मालूम हो गया होगा कि हम लोगों को इस स्कूल में नौकरी का मार्ग ढूँढ़ना नहीं सिखलाया जाता, बल्कि सत्य का अनुसंधान करना सिखाया जाता है। इसलिये स्कूल एक पवित्र देवालय है। यहाँ हमारे व्यवहार भी पवित्र होने चाहिए। बच्चों की अवस्था अभी छोटी है। उनको संसार में बहुत कुछ करना है। जो आदतें यहाँ पड़ जायँगी वे ही जन्म भर रहेंगी। इसलिये आइए, हम लोग सोचें कि किस प्रकार का जीवन हमको बनाना चाहिए। अभी हमने सीखा है कि यहाँ हमको सत्य का मार्ग बताया जाता है, सृष्टि के अटल सिद्धांत सिखलाए जाते हैं। इन्हीं सिद्धांतों को

अपने समाज में घटाइए। आप देखेंगे कि बिना सत्य के हम लोग एक पल भी नहीं रह सकते । एक मिनट के लिये मान लीजिए कि संसार के सब लोग ऐसे हो जायँ कि कहें कुछ और करें कुछ । देखिए इसका क्या फल होगा। आपको स्कूल के अध्यापक लोग दस बजे रोज बुलावें, आप बस्ता लेकर क्लास में बैठ जायँ और उस समय अध्यापक लोग घर बैठे रहें। रेल के टाइम टेबुल में रेल के चलने का वक्त ५ बजे शाम बतलाया जाय, मुसाफिर असबाब लेकर प्लेटफार्म पर मौजूद रहें और रेल बिल्कुल ही न आवे। संसार में कैसा कोलाहल मच जाय। विद्या की वृद्धि और व्यापार की उन्नति सब बंद हो जाय। इससे सिद्ध हुआ कि संसार सत्य पर चलता है और असत्य सर्वदा हानिकारक है। दो आदमियों का निर्वाह एक दूसरे के साथ हो नहीं सकता, यदि उनमें से एक भी झूठा हो। दोनों में हमेशा झगड़ा रहेगा। कोई गृहस्थी चल नहीं सकती यदि उसमें सब व्यवहार झूठा ही हो। व्यापार की कभी उन्नति हो नहीं सकती जब व्यापारी झूठे हों और ग्राहक झूठ को न रोकें। हमारे देश में बहुत सी दूकानों पर सच का व्यवहार कम होता है। किसी दूकान पर भी एक दाम नहीं। चीज का मोल पूछिए, दुगना और तिगुना बतलाएँगे। इन दूकानों पर

सीधे सच्चे ग्राहक का काम नहीं। दूकानदार किसी वस्तु का १) दाम बतलाता है तो माल लेने वाला ।), घंटों इसी में लगते हैं। एक ही तरह की चीज मैं किसी दूकान से ।) की लाया तो आप उसी दूकान से मोल भाव करके ≡) की ला सकते हैं और एक तीसरा आदमी, जो हम दोनों से चतुर है, =) में ला सकता है। इस देश में 'चतुर' से तात्पर्य 'धूर्त' और 'सीधे' का अर्थ 'बेवकूफ' लगाया जाता है। अँगरेजों की दूकानों पर जाइए। हर एक चीज का दाम बँधा हुआ है। सच का व्यवहार है। चाहे मर्द जायँ चाहे औरतें। बच्चों को भी मोल-भाव की जरूरत नहीं। हमारे दूकानदार कसम खाने के लिये हमेशा तैयार रहते हैं। यही हाल हमारे स्कूल के लड़कों का है। वे कसम खाना एक मामूली बात समझते हैं। 'इल्म कसम', 'जनेऊ कसम', यह सब शब्द हर रोज सुनने में आते हैं। वे समझते हैं कि कसम खाने से उनपर जल्दी विश्वास हो जायगा। पर याद रखो कि विश्वास केवल सदा सच बोलने से बढ़ता है। हँसी में भी झूठ न बोलो। बिना झूठ बोले भी हँसी-खेल हो सकता है। अपनी कमजोरी भी सच-सच कह दो। देखो, सब लोगों का विश्वास बढ़ जायगा। कई लड़के समझते हैं कि अपना कसूर सच-सच कह देने से उनको दंड मिलेगा।

और झूठ बोलकर वे सजा से बच जायँगे। दंड का डर झूठा है। एक डच चित्रकार एक बार अजायबघर में मनुष्य के अंजर-पंजर की तस्वीरें खींचने गया। उसने तस्वीरें खींचना शुरू किया। दोपहर को उसे कुछ नींद मालूम हुई और वह सो गया। थोड़ी देर में संयोग से भूकंप आया जिससे उसकी नींद खुल गई। नींद में वह भूल गया कि वह कहाँ है। नींद खुलते ही उसने अंजर-पंजरों को हिलते-डुलते पाया; उसने समझा कि मुर्दों ने मुझे आ घेरा है। बस, तुरंत खिड़की के रास्ते से वह नीचे कूद पड़ा और उसकी टाँग टूट गई। तब उसको याद आया कि उस कोठरी में वह तसवीरें खींचने आया था और पीछे मालूम हुआ कि अंजर-पंजर भूचाल के सबब से हिले थे। इसी प्रकार दंड का डर एक स्वप्न मात्र है। सच्चे लड़के को कभी दंड नहीं मिलता। यदि वह सच्ची बात कह दे तो उसको इनाम मिलता है।

सन १८३० ई० में एक दिन प्रातःकाल दिल्ली के बादशाह ने लोगों को इनाम के लिये जमा किया। जिनसे वे प्रसन्न थे उन सबको पुरस्कार और मणि-माणिक्य दिए गए। सब लोगों को इनाम बँट चुका पर एक नौजवान लड़का जिसको इनाम के लिये बुलवाया गया था, उस समय तक नहीं पहुँचा। उस बालक का नाम

सैयद अहमद था। बादशाह सलामत उठ खड़े हुए और तामजाम पर सवार होकर महल की तरफ चले। उसी समय सैयद अहमद दौड़ा हुआ आया। खजानची ने उसे पुकारा। जब बादशाह को मालूम हुआ कि सैयद अहमद आ गया है, उन्होंने तामजाम रोकने का हुक्म दिया और लड़के को अपने सामने बुलाया और उससे देर करके आने का सबब पूछा। सैयद ने कहा, "हुजूर मैं आज देर तक सोया रह गया। जब जागा तो जल्दी की। मेरा दक्खिनी घोड़ा ३० बरस का बुड्ढा है; तिस पर भी मैं चाहता तो उसको तेज ला सकता था, पर उसका बुढ़ापा देखकर उसको आहिस्ता आहिस्ता लाया और मैं अब खुदावंद सलामत के रूबरू हाजिर हूँ।" जिस वक्त सैय्यद अपना कसूर सच सच बादशाह से कह रहा था, सब लोग इशारा कर रहे थे कि चुप रहो। पर यह लड़का होनहार था। उसको सच बोलकर सजा पाने का डर नहीं था। बादशाह ने खुश होकर उसको मोतियों का एक हार दिया और उसकी टोपी के लिये एक जवाहिर। यही नौजवान लड़का आगे चलकर सर सैय्यद अहमद खाँ हुआ जिसने अलीगढ़ में मुसलमानों के लिये एक बड़ा कालेज खोला।

जैसे सजा के डर से सच न बोलना बुरा है, वैसे ही इनाम के लालच से सच बोलना भी बुरा है। हममें सच

बोलने की आदत होनी चाहिए, चाहे ऐसा करने में इनाम तो दूर रहा, हमें सजा भो हो। संसार में ऐसे महात्मा हुए हैं जिन्होंने सच के लिये जन्म भर कष्ट भोगा है अथवा सचाई के लिये जान से मारे गए हैं। सच्चे आदमी के दिल का दर्वाजा हमेशा नए विचारों के लिये खुला रहता है, उसको हर रोज नई बातें सूझती हैं। उसमें नई बातों को खोजकर जानने की शक्ति बढ़ जाती है। मामूली बातों में भी उसको असाधारण ज्ञान छिपा हुआ मिलता है। जिन लोगों ने अमेरिका और अन्य देशों का पता लगया, जिन्होंने आक्सिजन, हायड्रोजन आदि तत्त्वों का ज्ञान संसार को दिया, जिन्होंने पृथ्वी में आकर्षण शक्ति और संसार के अन्य प्राकृतिक नियमों को जाना वे सब ऐसे ही लोग थे, जिनको सच बोलने की बान पड़ गई थी और जिनका हृदय सचाई के रंग में रँग गया था। पोथी पढ़कर हम लोगों में कई आदमी बड़ी-बड़ी पदवियाँ पा जाते हैं, पर यदि आप चाहते हैं कि हमारे देश में भी नए मुल्कों की तलाश करनेवाले, नए सिद्धांतों के बतलानेवाले और नई कलें इत्यादि निकालनेवाले पैदा हों तो अभी से अपने चित्त को ऐसे साँचे में ढालिए कि झूठी बात मन में आने ही न पावे; बल्कि कहीं झूठ का व्यवहार देखिए तो उस समय तक सच्ची शांति न मिले जब तक कि सचाई की विजय

न हो; किसी का मुलाहिजा या डर आपको सच्चे मार्ग पर चलने से न रोके। हमारे देश में लोग मुलाहिजे में बहुत सा झूठा व्यवहार करते हैं। ग़दर के समय एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार ने एक अफसर को अपने यहाँ छिपाकर उसकी जान बचाई थी। जब अँगरेजी राज्य फिर से स्थापित हुआ तब यही अफसर उनके नगर में एक बड़े पद पर नियुक्त किया गया। समय समय पर उसके यहाँ ताल्लुकेदार साहब की जमींदारी के मुकद्दमे जाते थे और वह न्याय के अनुसार उनका फैसला करता था। कभी कभी ताल्लुकेदार साहब मुकदमा हार भी जाते। उनको यह बुरा लगता। एक दिन वह अफसर के यहाँ गए और बोले कि मैंने तुम्हारी जान बचाई, तुममें इतना भी मुलाहिजा नहीं कि हमारे मुकदमे ठीक रखो। साहब ने तुरंत जवाब दिया कि आपने मेरी जान बचाई इसके लिये मेरी जान तैयार है; आप जब चाहें आजमा लें पर मैं अपनी जान के लिये अपना ईमान नहीं दे सकता।

यह है आदर्श—'प्लैटो इज माई फ्रेंड बट ट्रुथ इज माइ ग्रेटर फ्रेंड' अर्थात् अफलातूँ मेरा मित्र है किंतु सत्य मेरा उससे भी बड़ा मित्र है। हमारे देश में प्रायः इसका उलटा समझा जाता है। हम लोग मुरौवत, मुलाहिजे में सब कुछ करने के लिये तैयार हो जाते हैं। अगर एक अँगरेज

किसी काम को नहीं कर सकता तो जितनी जल्दी 'नो' अर्थात् 'नहीं' वह कह देगा उतनी जल्दी हम नहीं कहते। अगर हमको न करना होगा तो कह देंगे कि 'देखा जायगा' या कह देंगे 'हाँ' जिसमें मित्र उस समय खुश हो जाय, फिर पीछे कोई बहाना ढूँढ़ लेंगे। पर याद रखो 'नहीं' वही कह सकता है जिसका चरित्र बन चुका। अगर कभी लोगों को शिकायत करते सुनो कि अमुक मनुष्य में मुरौवत नहीं है, तो यह निश्चित समझो कि जिसकी शिकायत की जाती है उसमें सत्य और दृढ़ता के गुण हैं। इसलिये दृढ़तापूर्वक 'नहीं' कहना सीखो।

सच बोलने से हिम्मत बढ़ती है। हमारे देश में सच बोलने से प्रायः लोग भागते हैं। जहाँ सच्ची गवाही देनी हो वहाँ लोग कम मिलेंगे; पर झूठे गवाहों की कमी नहीं। किसी दरजे का कोई लड़का कोई कसूर करे तो उसका नाम कोई नहीं बतलाएगा; पर चाहिए तो यह कि कसूर करनेवाला आप ही खड़ा होकर कह दे कि यह कसूर मुझसे हुआ है, जिसके लिये मैं शरमिंदा हूँ। पर अपराधी स्वयं न कहे तो उसके साथियों को याद रखना चाहिए कि सच बोलना मित्र को प्रसन्न रखने से अच्छा है।

दूसरे के अपराध को न बतलाने से उसका सुधार नहीं हो

सकता। थोड़े दिन की बात है कि बनारस में चौक के पास सबेरे के समय एक चोर पकड़ा गया। काशी में लोग गंगा स्नान के लिये ४ बजे सबेरे से जाने लगते हैं। इसलिये घर के दरवाजे उसी वक्त से खुले रहते हैं। यह चोर इस ताक में रहता था कि जिस घर से कोई आदमी निकले उसमें छिपकर अंदर चला जाऊँ। महीनों तक यह इसी तरह इस मुहल्ले में चोरी करता रहा। लोगों को आश्चर्य होता था कि रात भर दर्वाजे बंद रहने पर भी चीजें कैसे चोरी जाती हैं। एक दिन चोर पकड़ा गया, लोग चारों तरफ से जमा हुए। एक आदमी उसको थाने पर ले चला। लोगों ने कहा 'अरे जाने दो, सवेरे का वक्त है, क्यों अपने ऊपर पाप लेते हो।' लेकिन उसने एक न सुनी। जब चोर थाने पर गया तब मालूम हुआ कि उसने कई मुहल्लों में चोरी की थी। यदि सच्चे गवाह मिलने लगें तो दुनिया से जुर्म कम हो जायँ। पड़ोसी और दर्शक लोग जो कुछ देखें अपने आप आकर बतला दें तो ऐसी बातें कम हो जायँ। मेरे (हरिश्चंद्र) स्कूल के पुस्तकालय से कुछ किताबें खो गईं। मैंने लड़कों से कहा कि गुदड़ी बजार में जाकर देखो, शायद वहाँ उनमें से कोई किताब बिकने आए। एक लड़के ने एक दिन एक किताब एक दूकानदार के यहाँ बिकते देखी और मुझे

आकर खबर दी । मैंने कहा, "चलो, उस दूकान पर ले चलो"। उसने कहा, "वह दूकानदार मेरा पड़ोसी है, जान लेगा तो लड़ाई होगी। इसलिये मैं दूर ही से उसकी दूकान बतलाकर हट जाऊँगा।" मैं जानता हूँ कि यह लड़का झूठा नहीं है, नेकचलन है, पर सच कहकर तकलीफ उठाने की हिम्मत उसमें नहीं है। यही कमजोरी तमाम हिंदुस्तान में फैली हुई है। किसी के सामने तो कसूर नहीं बतलाएँगे । पर पीठ पीछे चुगली खाएँगे, जो एक प्रकार की कायरता है। किसी के विरुद्ध यदि कुछ कहना बहुत ही आवश्यक हो तो प्रेम-पूर्वक, शिष्टता-पूर्वक सच सच कह डालो। चुगली खानेवाला, बकवाद करनेवाला और गप हाँकनेवाला बहुधा झूठ की शरण लेता है। इसीलिये सभ्य समाज में उसका आदर नहीं होता। कुछ लोग अपना दोष किसी जड़ पदार्थ पर मढ़ देते हैं। यदि देर करके आए तो कह दिया, मेरी घड़ी बिगड़ गई है। अमेरिका के एक राष्ट्रपति का लेखक देर करके आया करता था। उन्होंने एक दिन उससे इसका कारण पूछा। उसने कहा, मेरी घड़ी बिगड़ गई है। राष्ट्रपति ने कहा, या तो तुम अपनी घड़ी बदलो या मैं अपना लेखक बदलूँ।

एक प्रकार का और असत्य है जिससे हमको बचना चाहिए। संदेश देने में अथवा किसी बीती हुई बात का

वर्णन करने में हम लोग अनजाने ही भूल करते हैं। मान लीजिए मैं किसी लड़के से कहूँ कि अपने मास्टर साहब से कहो, जब अवकाश (फुर्सत) हो तो मुझसे मिलें। लड़का मास्टर साहब से सँदेसा कहने में "जब फुर्सत हो" कहना भूल जाए और मास्टर साहब अपना पढ़ाना छोड़कर चले आएँ। यह मिसाल मामूली है, पर इससे भी प्रकट हो जायगा कि जब हम किसी दूसरे का सँदेसा या दूसरे की बातचीत या किसी घटना का वर्णन करें तब ध्यान रखें कि उतनी ही बातें कही जायँ जो यथार्थ में हुई हैं। ऐसा न करने से बड़े बड़े झगड़े हो जाते हैं। इसलिये याद रखो कि किसी बात को अनजाने भी घटा-बढ़ाकर कहना असत्य का ही एक रूप है।

सच के तीन दुश्मन हैं। अभिमान ( शेखी ), सुस्ती और डर। घमंडी आदमी यह समझता है कि वह सब कुछ जानता है। नई बात की खोज उसमें नहीं रहती। दूसरों की बात वह नहीं सुनता। उसके विचार के विरुद्ध जो बात होगी उसको वह असत्य समझेगा। सच्चा आदमी नम्र होता है। उसको नई बात जानने का शौक होता है। इसलिये उसमें आलस्य नहीं आने पाता। संसार की कोई शक्ति उसको सच के पथ से हटा नहीं सकती। वह निडर होता है।

बालको ! सदा सत्य को ग्रहण करो और असत्य को छोड़ो। यदि यह गुण आप लोगों में आ जाए तो सारे संसार से आपका नाता हो जाए। सच्ची बात हिंदू, मुसलमान, अँगरेज अथवा जो कोई बतलाएगा वह आपको प्रिय लगेगी और असत्य आपको अप्रिय लगेगा, चाहे आपका कोई कुटंबी ही उसको कहे। आप संसार को सुख और उन्नति के मार्ग बतलाएँगे। आप लोगों में कोई वैज्ञानिक होगा, कोई इतिहास की गुप्त बातों का पता लगाएगा, कोई देश की कुरीतियों को दूर करने का यत्न करेगा और यदि आप लोगों में से एक को भी यह गौरव प्राप्त होगा तो आपके हित चाहनेवालों का, जिनमें सब से पहला दर्जा इस स्कूल के जन्मदाता श्रीमान् राजर्षि राजा साहब भिनगा का है, और उनके बाद आपके शिक्षकगण, इन सबका परिश्रम सफल होगा और इन लोगों की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं होगी। पर इन सबके ऊपर एक ऐसी शक्ति है जो सत्य का भंडार है। वह धर्म और ज्ञान का केंद्र है। वह शक्ति सब नियमों को बनानेवाली है। एक पल भी ऐसा नहीं जब वह यह न देखती हो कि कौन उन नियमों पर नहीं चलता, क्योंकि वह हमारे अंदर और बाहर सब जगह है। मेरे मित्रो ! तुम लोग सदा से शक्ति के उपासक चले आए हो,

फिर से उठो और उसी शक्ति की उपासना करो। अँगरेजी के एक लेखक ने कहा है—

लुक आउट फार द मैन हू डेयर्ज ऐसर्ट दि आई।
"ह्वाट आई कैन डू, आई ऑट टु डू।
ह्वाट ऑइ ऑट टु डू, आई कैन डू।
ह्वाट आई कैन एँड ऑट टु डू।
बाइ द ग्रेस अव गॉड आइ विल डू।"

अर्थात् उस आदमी को खोजो जो हिम्मत के साथ 'मैं' पर जोर देता है—

"जो मैं कर सकता हूँ, मुझे करना चाहिए।
जो मुझे करना चाहिए, मैं कर सकता हूँ।
जो मैं कर सकता हूँ और करना चाहिए।
भगवान की कृपा से मैं करूँगा।"

---

( ९ )

## बुरे शब्दों का प्रयोग

इस देश में गाली-गलौज का रिवाज बहुत है। हँसी-दिल्लगी में लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो सभ्यता के विरुद्ध हैं। उनमें यह आदत इसलिये पड़ जाती है कि बाल्यावस्था ही से वे इन शब्दों को सुना करते हैं।

बैलगाड़ीवाला अपने बैलों को माँ और बहिन की गाली देता चलता है। घोड़े की गाड़ी हाँकनेवाला भी यही करता है। यहाँ तक कि किसी किसी रईस और भले आदमी का 'सखुन-तकिया' कोई न कोई गाली होती है। 'सखुन-तकिया' उन शब्दों को कहते हैं जो अनजाने बार-बार मुँह से निकल जाते हैं।

बुरे शब्द यदि भले आदमी के मुँह से निकलते हैं तो उनकी बुराई नहीं चली जाती। उनके अंदर विष अवश्य रहता है। उच्च श्रेणी के आदमियों के मुँह से फूल झड़ते हैं। क्रोध में भी उनके शब्दों में मिठास रहती है। सोचने की बात है कि हमारी भाषा में प्रायः सभी गाली के शब्द हमारी महिलाओं पर आघात करते हैं। हमारी कोमलहृदया देवियाँ इन विषैले शब्दों का निशाना बनती हैं। दो मर्द आपस में मिलकर गाली-गुफ्ता करते हैं तब भी नाम बेचारी स्त्रियों का ही लेते हैं। अध्यापकों और बालकों को चाहिए कि इस बुराई को निकालें। स्कूल में जलपान अथवा खेल के लिये जब छुट्टी हो तब इसका विशेष ध्यान रहना चाहिए, क्योंकि उस समय बालकों को खेल-कूद, आमोद-प्रमोद, और गुल-गपाड़ा करने की एक प्रकार से स्वतंत्रता रहती है। यह स्वतंत्रता बुरी नहीं है। ऐसे समय में यदि अध्यापक-गण

किसी को बुरे शब्दों का प्रयोग करते सुनें तो तुरंत उनको चेतावनी दे दें। जिस प्रकार कोयला छूने से हाथ और वस्त्र काले हो जाते हैं, उसी प्रकार दुर्वचनों के प्रयोग से आत्मा मलिन हो जाती है। गंदे शब्द गंदे विचारों का परिचय देते हैं। यदि हमारे विचार पवित्र हैं तो हमारे मुँह से जो शब्द निकलेंगे वे कदापि अपवित्र नहीं होंगे। पहले गंदे विचार उत्पन्न होते हैं तब अपवित्र शब्द निकलने लगते हैं, और अंत में अनुचित काम भी होने लगते हैं। जिसके कर्म नीच होते हैं उसी को बुरे चरित्र का आदमी कहते हैं।

अब सोचना चाहिए कि यह आदत कैसे छूट सकती है। सबसे पहले हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब कभी हमारे मुँह से ऐसा शब्द निकल जाय तब हम प्रयत्न करें कि फिर वैसा न हो। दस-पंद्रह दिन ध्यान रखने से यह बुराई दूर हो सकती है।

दूसरे जब कभी किसी इक्केवाले या गाड़ीवाले को जिसके इक्के या गाड़ी पर पर हम सवार हों, गाली देते सुनें तब उसे धीरे से समझा दें। अगर पूरी सवारी का किराया दें तो उससे पहले तै कर लें कि घोड़े या बैल को गाली मत देना। मैंने स्वयं देखा है कि कितने ही इक्केवालों की आदत इसी तरह छूट गई है।

तीसरे, ध्यान रखो कि जिनके मुँह से अनजाने अपशब्द निकल जाते हैं उनके मुँह लगना अच्छा नहीं। नीच और दुष्ट आदमियों को छोड़ दो पर, ऐसे लोग जो ऊँचे पद पर हैं, उम्र में बड़े हैं और जिनकी मान-मर्यादा है उनके मुँह से यदि कोई गंदा शब्द निकले तो नम्रता से उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसे शब्द आपको शोभा नहीं देते। अगर बराबर वाला या छोटा हो तो उसे तुरंत समझा देना चाहिए।

बहुत से शब्द ऐसे हैं जो साधारणतः बुरे नहीं हैं परंतु विशेष अवस्था में उनका प्रयोग असभ्यता-सूचक होता है; जैसे, 'बच्चू', 'राजा', इत्यादि। अध्यापक को चाहिए कि इन शब्दों के प्रयोग को भी रोक दें। स्कूलों में असभ्य व्यवहार किसी प्रकार का भी हो तो रोक दें, लड़कों को समझाएँ कि जब स्कूल में पहले मिलें तब एक दूसरे को 'नमस्कार' या 'नमस्ते' इत्यादि कहें। प्रतिदिन ऐसा करने की सलाह दें। थोड़े ही दिनों में बालकों में भ्रातृ-भाव बढ़ जायगा, उनके आदर्श ऊँचे हो जायँगे। लड़कों को यह भी बतलाया जाय कि जब कभी वे किसी स्त्री को सड़क पर देखें, नीची निगाह कर लें। जिस पाठशाला में सब बालक ऐसे ही हों उसके अध्यापक और छात्र दोनों को अभिमान होना चाहिए।

---

( १० )

## पाठशाला तपस्या का स्थान है

लड़के दस बजे स्कूल आते हैं। इसके पहले घर पर भोजनादि से निवृत्त हो लेते हैं। कपड़े पहनकर किताब हाथ में ले वे इस प्रकार आते हैं मानों अस्त्र-शस्त्र लिए हुए योद्धागण रण-क्षेत्र में जा रहे हैं। और बात भी यही है, पाठशालाओं में विद्या और अविद्या में युद्ध होता है। आलस्य और परिश्रम आपस में भिड़ते हैं। यहाँ जिसको विजय प्राप्त होती है उसकी सदा और सब स्थानों पर विजय होती है। जो लोग पाठशाला आते हैं उनके लिये पहली आवश्यक बात यह है कि वे अपने ध्यान को एकाग्र रखें। जिन बातों से चित्त व्यग्र होता है या ध्यान बँट जाता है उन्हें दूर रखें। मैंने देखा है कि कभी-कभी लड़के स्कूल जारी होने के दस-पंद्रह मिनट बाद ही अपने मास्टर से छुट्टी लेकर मिठाईवाले की दूकान पर मिठाई खाने लगते हैं अथवा बाहर जाकर लघुशंका करने लगते हैं। दरजे में तो पढ़ाई हो रही है, बाहर लड़के मिठाई खा रहे हैं। यदि उन लड़कों से कहा जाय कि ऐसा क्यों करते हो तो उत्तर देते हैं कि प्यास लगी थी, इसलिये बाहर आए। उन लोगों को जानना चाहिए कि

स्कूल में वे केवल अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करने नहीं आते। स्कूल में चरित्र-सुधार-संबंधी शिक्षा होती है। जो लड़का आधा घंटा पहले घर से पेट भर भोजन करके चला था और यहाँ आकर फिर अपने पिता का बहुमूल्य धन मिठाई पर नष्ट करता है वह चरित्रहीन है। और जो लड़का स्कूल का काम आरंभ होते ही लघुशंका करने दौड़ता है वह रोगी है, उसका स्थान अस्पताल में है। मनुष्य के चित्त में जो निरर्थक आकांक्षाएँ और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं उनका दमन करना बड़ी भारी तपस्या है। स्कूल केवल विद्या-प्राप्ति का ही स्थान नहीं है, वरंच तपस्या का स्थान भी है। प्राचीन काल में हमारे देश में बड़े बड़े विश्वविद्यालय थे, उनमें विद्यार्थी और गुरु रात-दिन कई वर्ष तक एक साथ रहते थे। रूखा-सूखा जो कुछ उन्हें मिलता था, खाते थे। सड़े घी की मिठाइयाँ और बदहजमी पैदा करनेवाला चूरन उन्हें नहीं मिलता था। हम उन्हीं प्राचीन काल के विद्यानुरागी महापुरुषों के वंशज हैं। इसलिये हमको चाहिए कि अपनी पाठशालाओं में प्राचीन तपस्या के उच्च भावों को जारी करें। तभी हमारी शिक्षा पूर्ण होगी और सरस्वती देवी हमसे प्रसन्न होंगी।

---

( ११ )

# पाठशाला कुटुंब है

जहाँ दस आदमी मिलते हैं उसको समाज कहते हैं। समाज में जितने आदमी होते हैं उन सब की रुचि, स्वभाव इत्यादि में भेद होता है। कुटुंब भी एक समाज है जिसमें एक मुखिया होता है, जो घर का सब प्रबंध करता है। उसका कार्य अन्य कुटुंबियों की रक्षा करना है। इसी प्रकार स्कूल एक कुटुंब है, अध्यापकगण माँ-बाप के समान और विद्यार्थी बच्चों के समान हैं। घर में माँ-बाप का प्रभाव बच्चों के चरित्र, स्वभाव, रहन-सहन आदि पर पड़ता है। माता-पिता राजा की नाईं घर का शासन करते हैं। परंतु राजा प्रजा से दूर रहता है और माता-पिता रात-दिन बच्चों के साथ ही रहते हैं। जितनी देर बच्चे स्कूल में रहते हैं उतनी देर के लिये मानों माँ-बाप अपना भार अध्यापकों को दे देते हैं। अध्यापक और विद्यार्थियों का संबंध कुटुंब के मुखिया और बच्चों के समान है।

घर में जो बड़े लड़के होते हैं वे छोटों को सहायता देते हैं। जो लड़का खड़ा नहीं हो सकता उसको बड़े लड़के खड़ा

होना सिखाते हैं। जो चल नहीं सकता उसको चलना सिखाते हैं। हर अवस्था के लड़के जब एक साथ खेलते हैं, उनको एक-दूसरे से सहायता पहुँचती है। इसी तरह स्कूल में जो बड़े दर्जे के लड़के हैं उनको छोटे दर्जे के लड़कों की सहायता करनी चाहिए। मान लो, छोटे दर्जे के दो लड़के आपस में लड़ रहे हैं और बड़े दर्जे का लड़का उनको लड़ते देख रहा है। उसका कर्तव्य है कि उनकी लड़ाई छुड़ावे और उनमें मेल करा दे। मतलब यह है कि जिस प्रकार अध्यापक विद्यार्थियों के मस्तिष्क की शक्ति के विकास में सहायता करता है और उसके चरित्र की उन्नति की चिंता करता है उसी प्रकार स्कूल के बड़े लड़के छोटे लड़कों में परस्पर संबंध, प्रेम और प्रमोद की शक्तियों को बढ़ाते हैं।

प्रत्येक स्कूल में कुछ विलक्षणता होती है। अभी थोड़े ही दिन हुए, एक कालेज के प्रिंसिपल ने एक प्रभावशाली व्याख्यान में अपने यहाँ के बालकों को बतलाया था कि हमारे कालेज के बालक जहाँ जाते हैं वहाँ अपने चरित्र से अपने कालेज के गौरव का परिचय देते हैं; उनमें एक प्रकार की मर्यादा होती है; उनका व्यवहार दूसरों से सुंदर होता है; उनमें सफाई और स्वच्छता होती है; उनको आत्म-गौरव और दूसरों की

प्रतिष्ठा का ख्याल रहता है; वे नीच और असभ्य व्यवहारों से घृणा करते हैं।

क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारे बालकों में भी इसी प्रकार की विशेषता आ जायगी ? पहला गुण जो स्कूल के बालकों में आना चाहिए वह माता-पिता का सच्चा आदर है। कई लड़के अपने माता-पिता को 'आप' कहकर बुलाते हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे देश के वहुत से बच्चे अपने माँ-बाप को "तू" कहते हैं। प्रणाम करना तो दूर रहा, यदि उनसे कहा जाय कि "आप" कहा करो तो उनको शर्म आती है। स्कूल के प्रत्येक बालक को इस बात में अपना गौरव समझना चाहिए कि वह प्रातःकाल उठकर या अन्य किसी उपयुक्त अवसर पर अपने माता-पिता के पैरों पर सिर रखे। भारतवर्ष की यह प्रचीन प्रथा है। इसी में भारत का गौरव था और ऐसा करने में कुछ शर्म न आनी चाहिए।

दूसरा गुण जो बालकों में होना चाहिए वह यह है कि कोई लड़का दूसरे की चीज बिना उसके मालिक की आज्ञा के न ले। यदि कोई बालक अपनी कलम, पुस्तक टोपी या दुपट्टा भूल जाय और किसी दूसरे बालक की निगाह उसपर पड़ जाय तो उस चीज को उठाकर स्कूल के दफ्तर में रख देना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि

हमारे स्कूल के प्रायः सभी बालक ऐसा करते हैं।

तीसरा गुण जो हमारे बालकों में होना चाहिए वह यह है कि वे कभी अपशब्दों का प्रयोग न करें। किसी लड़के के मुँह से गाली न निकलनी चाहिए। हमारे दुर्भाग्य से इस समय हमारे देशवासी गालियों का प्रयोग बहुत सीख गए हैं। बैल-गाड़ीवाला अपने बैलों को, इक्के-वाले और घोड़ा-गाड़ीवाले अपने घोड़ों को माँ और बहिन की गाली देते हैं। बड़े-बड़े पढ़े-लिखे और प्रतिष्ठित लोगों की कोई न कोई गाली तो 'सखुन-तकिया' हो गई है।

मैं तो जिस इक्के पर बैठता हूँ उस इक्केवाले से पहले वचन ले लेता हूँ कि वह रास्ते में गाली नहीं बकेगा। इसी तरह से यदि पढ़े-लिखे और प्रतिष्ठित लोग चाहें तो देश से गंदी बातें दूर हो सकती हैं।

---

( १२ )

## माता-पिता का सच्चा आदर

लड़कों को बतलाया जा चुका है कि माता-पिता को 'आप' कहकर संबोधन करें और उनके पैरों पर प्रतिदिन

प्रातःकाल सिर रखें; परंतु याद रखना चाहिए कि माता-पिता की सच्ची इज्जत तभी हो सकती है जब हम उनके दुख और सुख का ख्याल रखें। 'आप' कहना या सिर नवाना हृदय के शुद्ध भावों के बाहरी चिह्न मात्र हैं। जो लड़का अपनी पुस्तकें फाड़ देता है या अपनी कलम खो देता है वह अपने माता-पिता के साथ अन्याय करता है। यों तो किसी वस्तु को वृथा नष्ट करना संसार की भलाई के विरुद्ध है परंतु जब हम यह जानते हैं कि हमारे माता-पिता शिक्षा देने के लिये हर तरफ से पैसा बचाकर हमको देते हैं तब हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी दी हुई वस्तुओं को सावधानी से रखें। हमारे देश में बहुत-से लोग अपने बच्चों को बड़ी कठिनाई से पढ़ाते हैं। लोगों की आमदनी कम है, स्कूलों का खर्च बढ़ता जाता है। लड़कों को चाहिए कि अपनी असावधानता से इस खर्च को और ज्यादा न बढ़ने दें।

— —

( १३ )

## संसार संग्रामभूमि है

संग्रामभूमि में लड़ाई होती है। दो दलों में युद्ध होता है। एक दूसरे को जीतने का यत्न करता है। इस

प्रकार की लड़ाई मनुष्य के जीवन में भी हुआ करती है। जब हम सबेरे उठते हैं, तबीयत चाहती है कि सोए रहें; पर सांसारिक कामों की याद आती है। आँख मलते हुए उठते हैं। आलस्य और कर्तव्यपालन में युद्ध होता है। इसी प्रकार का संग्राम दिन भर होता रहता है। जब गप्प शुरू होती है तब हम लोग सब काम भूल जाते हैं, बातें ही करते रहने को मन करता है। जब काम की सुध आती है तब बेमन से उठते हैं और काम करने लगते हैं। काम न करने के हजारों बहाने मिल जाते हैं। सर्दी की अधिकता, धूप की तेजी, पानी बरसना, जरा हरारत हो जाना तो साधारण बहाने हैं। जो ऐसे बहाने करता है वह संसार की कुश्ती में हार जाता है। आलस्य, गप्पबाजी इत्यादि को जहाँ एक वार जीत मिली, फिर बराबर उनकी जीत होती जाती है। परंतु कर्तव्य पालन करने की जो दृढ़ प्रतिज्ञा करता है उसको संसार की कोई कठिनाई रोक नहीं सकती। अधिक से अधिक सर्दी पड़े, कैसी ही कड़ी धूप हो, पानी चाहे मूसलाधार पड़े, वह अपने नित्यकर्म को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार उच्च कोटि के लोग काल को वश में कर लेते हैं और उनके सब कार्य ठीक समय पर होने लगते हैं। इसके विपरीत होने पर उनको कष्ट और दुःख होता है।

( १४ )

# जीवन एक तैयारी है

जब कभी हमको लंबा सफर करना पड़ता है तब हम पहले सोच लेते हैं कि पहले दिन, दूसरे दिन और तीसरे दिन कितनी कितनी दूर जायँगे। इसी प्रकार अपने कुल सफर को कई मंजिलों में बाँट देते हैं। जब एक मंजिल तै कर लेते हैं तब दूसरे की तैयारी करते हैं। अगर एक मंजिल न जायँ तो दूसरे की तैयारी का फिक्र नहीं रहता। इसी प्रकार जीवन एक तैयारी है। रात को हम सोते हैं तो इसलिये कि आराम करने से हम दूसरे रोज की मेहनत के लिये तैयार हो जायँ। सोना खाली आराम करने के लिये है। इस प्रकार परमेश्वर ने मनुष्य को ऐसा बनाया है कि उसके जीवन का एक भाग दूसरे भाग की तैयारी है। गोद के बच्चों को माँ हाथ पकड़कर खड़ा होना सिखलाती है। धीरे-धीरे उसको चलाने लगती है। तब वह अपने आप खड़ा होने, चलने और दौड़ने लगता है। दो-तीन बरस के बच्चे अपने आप हाथ-पैर मारने लगते हैं, एक जगह निश्चल नहीं बैठ सकते। उनका ऐसा स्वभाव भगवान ने उनके शरीर में बल लाने के लिये

बनाया है। यही बल आगे चलकर उनके काम आता है। छोटे बच्चों का स्वाभाविक खेल कूद भी उनको जवानी के लिये तैय्यार करता है। उनका दौड़ना उनके पट्ठों को मज़बूत करता है। उनके बोलने और सुनने की शक्ति उनमें आपसी सहानुभूति और प्रेम बढ़ाती है। जब बच्चे बड़े होते हैं, उनके पढ़ने का वक्त आता है और वे स्कूल या पाठशाला भेजे जाते हैं। उनको अक्षर सिखाए जाते हैं, किताबें दी जाती हैं। उनसे कहा जाता है कि ठीक वक्त पर स्कूल आना चाहिए। हर एक विषय में पढ़ने के लिये समय विभाजित रहता है। स्कूल में संयुक्तप्रांत निवासी के साथ बंगाली, दक्षिणी और पंजाबी पढ़ते हैं, इनमें दोस्ती हो जाती है। हिंदू और मुसलमान एक दूसरे से मिलते हैं। एक दूसरे के जन्म पर्यंत मित्र हो जाते हैं। शारीरिक व्यायाम के लिये प्रबंध रहता है, क्रिकेट, फुटबाल, हाकी इत्यादि खेल होते हैं। एक की नियमानुसार हार होती है, दूसरे की जीत। ये सब पढ़ाई और खेल क्यों होते हैं? इस-लिये कि ये आगे काम आवें। जो लड़के पढ़ते-लिखते हैं वे अपने कुटुंब का पालन कर सकेंगे, अपने गावँ या शहर या देश की सेवा करने के योग्य बनेंगे। कर्त्तव्य पालन में कभी-कभी कुछ लोग उनके शत्रु बन जायँगे।

हारने पर दूसरे दल वालों से द्वेष और ईर्ष्या और जीतने पर अभिमान और अहंकार न होना, ऐसी आशा उनसे की जायगी। जो बालक सदैव समय पर पाठशाला जायँगे, अपना नित्य का पाठ पढ़ेंगे, पाठशाला के नियमों का उल्लंघन नहीं करेंगे, खेल के मैदान में अन्याय से जीतने की चेष्टा न करेंगे, वे बड़े होकर संसार में संयमी बने रहेंगे और उनके कार्य सत्य और न्याय पर निर्भर रहेंगे। इस प्रकार पाठशाला के बालक आगे के लिये तैय्यार हो रहे हैं।

जब लोग जवान होते हैं तब कमाने लगते हैं। सब लोग जानते हैं कि एक दिन बूढ़े हो जायँगे, शरीर से परिश्रम नहीं होगा। इसलिये सबको इस बात की चिंता रहती है कि बुढ़ापे के लिये कुछ कमाकर रख लें। जवानी बुढ़ापे की तैय्यारी है। यदि जवानी में लोग अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हैं, अपना व्यवहार साफ रखते हैं तो उनकी कमर वृद्धावस्था में नहीं झुकती, आँखों से वे अंधे नहीं होते और न कान से बहरे होते हैं। कमर का झुकना, आँख का कमजोर होना, कान का बहरा होना यदि बुढ़ापे में स्वाभाविक होता तो परमेश्वर की न्यायपरायणता में दोष आ जाता। परमात्मा ने मनुष्य को जितना जीवन प्रदान किया है उतना ही सामान दे दिया

है। यदि सामान कम हो जाय तो हमारी ही असावधानी है, उसका दोष नहीं। यदि बुढ़ापे में हम उठ-बैठ न सकें, किसी को देख न सकें, या बात न सुन सकें तो निश्चय जानो कि हमारे जवानी के दिन निष्प्रयोजन गए।

इस प्रकार बचपन लड़कपन की तैयारी है. लड़कपन जवानी की, जवानी बुढ़ापे की और बुढ़ापा एक ऐसे जीवन की जिसका हमको हाल मालूम नहीं। पर एक बात अवश्य मालूम है, कि आनेवाली संतान अनजाने उसी रास्ते पर चलेगी, जिसपर हम चलते आए हैं। यदि हमारा बचपन, लड़कपन, जवानी और बुढ़ापे का सिलसिला धर्मयुक्त है तो हजारों आदमी हमारे जीवन का अनुकरण करके लाभ उठावेंगे और यदि इसके विपरीत है तो हजारों नर-नारियों को हमारे कारण कष्ट होगा और उसके जिम्मेदार हम होंगे।

जीवन संसार यात्रा की तैयारी है। यदि इसके महत्त्व को हम समझ जाँय तो हममें आत्म-मर्यादा, परिश्रम, संतोष और आशा उत्पन्न हो जाय और हमारा जीवन संसार के उपकार का कारण बने।

---

( १५ )

## जीवन संगीत है

सब से कठिन काम चक्की पीसना समझा जाता है। यहाँ तक कि असह्य कष्ट उठाकर किसी काम के करने को साधारण बोलचाल में "चक्की पीसना" कहते हैं। "अपने बाल बच्चों के लिये दिन भर चक्की पीसता हूँ तब कहीं दो पैसे मिल जाते हैं।" इस प्रकार लोग अपने काम का रोना रोया करते हैं। कोई कहता है, हमारी किस्मत में "चक्की पीसना" ही बदा है। कुछ लोग यह कहते भी सुनाई देते हैं कि "चक्की पीसने" से छुटकारा हो तो हम न मालूम क्या कर डालें, इत्यादि। परंतु याद रखना चाहिए कि चक्की पीसने का-सा कठिन काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं, जो अबला कहलाती हैं। सोचने की बात है कि इन अबला स्त्रियों में कहाँ से इतना बल आ जाता है कि वे घर में चक्की पीसती हैं और उसके बाद भी उलाहना नहीं देतीं।

सब लोगों ने देखा होगा कि स्त्रियाँ चक्की पीसती जाती हैं और साथ २ गीत भी गाती जाती हैं। बस इस गीत गाने में ही वह बल है जिसके कारण उनको कठिन काम भी कठिन नहीं मालूम होता। यदि हम सब

अपने काम हँसी-खुशी से करें तो कठिन से कठिन काम भी हमको हलका मालूम होगा।

बरसात के पहले कहीं कहीं गढ़ों में पानी भरा हुआ मिलता है। इसके ऊपर काई जम जाती है और इसमें से दुर्गन्ध आने लगती है। पर जब वर्षा आरंभ होती है और पानी बरसने लगता है तब इन गढ़ों का पानी बह निकलता है। काई दूर हो जाती है और दुर्गंध का नाम नहीं रहता। इसी प्रकार अति कठिन परिश्रम से हमारा शरीर थक जाता है, चित्त दुखी हो जाता है, सुस्ती आ जाती है, किसी का अपने पास बैठना हमको अच्छा नहीं लगता। पर यदि हमारे आदर्श उच्च हों, हमारा हौसला बढ़ा हुआ हो, तो हम पर एक प्रकार से उत्साह और आनंद की वृष्टि होती रहे और हर एक काम को हम हँसते-खेलते हुए करें।

क्या हम इस संसार में हाथ पर हाथ रखकर बैठने के लिये आए हैं? यदि ऐसा होता तो जिस प्रकार हमें शुद्ध स्वच्छ वायु आकाश से मिलती है, पवित्र निर्मल जल नदियों से मिलता है, उसी प्रकार पकी पकाई रोटियाँ भी पेड़ों से मिलतीं और हमारे शरीर के ऊपर सर्दी और गर्मी से बचने के लिये भालू की तरह बाल होते। भगवान ने हम पर अत्यंत कृपा की है कि उन्होंने इस सृष्टि को ऐसा

रचा है कि हमको भोजन और वस्त्र के लिये परिश्रम करना पड़ता है। रैदास भक्त की कथा है कि उनके घर में मोची का काम होता था, पर वह अपना समय परमेश्वर का भजन करने में बिताते थे। इसपर बाप ने उनको घर से निकाल दिया। वह छप्पर की एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगे और वहीं उन्होंने जूता सीना शुरू किया। कहते हैं एक दिन श्रीकृष्णजी इनके पास आए और कहने लगे "अरे तू इतनी मेहनत क्यों करता है, यह पारस पत्थर ले और परमेश्वर का भजन कर, इस पत्थर के छूने से सब सोना हो जायगा और तुझे किसी चीज की कमी न रहेगी।" बहुत समझाने पर भी रैदास ने पारस लेना स्वीकार नहीं किया। तब श्रीकृष्ण बोले "अच्छा मैं इसको तुम्हारे छप्पर पर रख जाता हूँ, सोच-विचारकर जब तुम्हारी इच्छा हो इसे ले लेना।" महीनों बीत गए पर रैदास जूता ही सीते रहे! श्रीकृष्ण ने जब उनको फिर दर्शन दिए तब भी उन्होंने वही कहा कि "अपना पारस छप्पर पर से ले जाइए, जहाँ आप रख गए थे वह वहीं पड़ा है।" इस कथा से इस बात की शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर के सच्चे भक्त अपने पसीने की कमाई खाते हैं, बिना मेहनत उनके सामने अमृत ही क्यों न आए वे उसे तिनके के बराबर भी नहीं समझते।

संसार में जितने ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने सृष्टि के इतिहास का निर्माण किया है, पृथ्वी की काया पलट दी है, नए आविष्कारों के द्वारा भूमंडल का उपकार किया है, वे सब परिश्रमी, उद्योगी और व्यवसायी हुए हैं।

जब काम ही करने के लिये हमने जन्म लिया है तब क्यों न उसको भली भाँति, प्रसन्न-वदन, हँसते-खेलते, गाते हुए करें ? यदि ऐसा ही हमारा स्वभाव हो जायगा तो हम कभी खिन्न नहीं होंगे, शिकायत नहीं करेंगे और हमारा सब जीवन हमको एक प्रकार का संगीत मालूम होगा।

---

( १६ )

# सहानुभूति

## महापुरुषों के जीवन का रहस्य।

सबेरे का समय था। चारों ओर सन्नाटा था। सूर्य भगवान उदय हो चुके थे। जंगल का स्थान था। कुछ युवागण वहाँ पैमाइश करने गए थे। एक पहाड़ी नदी के किनारे वे जलपान कर रहे थे। इतने में एक स्त्री की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। यह आवाज बार-बार आने लगी परंतु झाड़ियों के कारण कुछ दिखलाई नहीं देता था। सब

के सब जिधर से आवाज आ रही थी उधर ही दौड़े। इनमें से एक १८ वर्ष का युवक पहले पहुँच गया। उसको देखते ही स्त्री ने कहा 'हे सज्जन! मेरा प्यारा लाड़ला वह देखो नदी में डूब रहा है और मुझे ये लोग नदी में कूदने नहीं देते, मुझे छुड़ाओ और जाने दो।" "जाने कैसे दें, यह तो नदी के बहाव में बहकर चट्टानों से टक्कर खाकर एक क्षण में रसातल को चली जायगी, जानें कैसे दें?" यह वाक्य उनमें से एक आदमी के थे जो उसको पकड़े हुए था।

१८ वर्ष के जवान ने तुरंत अपना कोट उतार दिया और किनारे की तरफ जाकर एक दृष्टि चट्टानों और पानी के भँवरों पर डाली। फिर डूबते हुए बालक के वस्त्रों को देख कर वह उसकी तरफ कूदा।

'भगवन्, यह मेरे बच्चे को अवश्य बचाएगा, हा! वह देखो मेरा प्यारा, बस अब डूबा, वह डूबा, डूबा, हा! सब लोग नदी के किनारे की चट्टान पर आकर देखने लगे। अब तक तो लोगों को बच्चे की चिंता थी, अब उस नौजवान की भी चिंता हुई। कभी तो मालूम होता कि वह भँवर में पड़ गया, कभी चट्टानों के पास से ऐसा निकल जाता मानों भगवान ही उसकी रक्षा कर रहे हैं। दो बार वह लड़का नजरों से ओझल तक हो गया; पर

फिर दिखाई देने लगा। तीन बार वह इस नौजवान के हाथ में आकर फिर बहाव में पड़ गया। बहादुर नौजवान ने अपना जोर बढ़ा दिया। सबके चेहरे पर घबराहट थी। सब भगवान का नाम ले रहे थे। इतने में दोनों एक सूखी चट्टान पर दिखलाई पड़े। बालक बेहोश था, जवान थका हुआ था। लोग उधर की तरफ दौड़े। बच्चे की नाड़ी ठीक थी। स्त्री ने हर्ष के आँसू बहाकर कृतज्ञतापूर्वक कहा "परमेश्वर तुमको इसका फल देगा। आज के काम के बदले में वह तुम्हारे लिये बड़े-बड़े काम करेगा। मेरे अतिरिक्त सहस्रों नर-नारी तुम्हारी भलाई के लिये प्रार्थना करेंगे।"

यह जवान जार्ज वाशिंगटन था जिसने आगे चलकर अपने देश अमेरिका को स्वतंत्र करने का यश पाया।

दक्षिण देश में एक हिंदू-परिवार था। एक दिन माता अपने पुत्र को मिठाई दे रही थी। सामने मजदूरनी के बच्चे को खड़ा देखकर, आधी मिठाई अपने पुत्र को और देकर कहने लगी—"लो यह उस लड़के को दे दो।" पुत्र ने बड़ी मिठाई मजदूरनी के बच्चे को दे दी और छोटी आप खाली। माता ने पूछा "यह क्या किया? लड़के ने उत्तर दिया—"यही तो आपने कहा था" यही बालक आगे चलकर भारतमाता का सुपुत्र महादेव गोविंद रानडे हुआ

जिनके परोपकार की कथाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

पहली कथा पाश्चात्य देश के एक महानुभाव के बाल्यावस्था की है, दूसरी पूर्वीय देश के। पाश्चात्य देशों में बल, पराक्रम, आत्मविश्वासादि गुणों का प्रादुर्भाव अधिक होता है। पूर्वीय देशों में आत्मत्याग, परोपकार और सेवाभाव अधिक होता है। महापुरुषों की जीवनी उनके देशों का दर्पण है।

बड़े आदमियों के जीवन में लोग बहुधा यही देखा करते हैं कि उन्होंने किन संस्थाओं को स्थापित किया, किस प्रकार से व्याख्यान दिए अथवा कैसे ग्रंथ लिखे, कौन कौन से बड़े काम किए। परंतु उनके जीवन में केवल वे ही कार्य उतने शिक्षाप्रद नहीं होते जो वे प्रकटरूप से संसार के संमुख करते हैं, जितने वे कार्य जो वे घर के अंदर अपने नित्यप्रति के व्यवहार में करते हैं अथवा जो वे बाल्यावस्था में अनायास कर बैठते हैं। वाशिंगटन और रानडे की कथाएँ ऊपर दी गई हैं। उनसे हमें उनके अन्य देशोपकारी कार्यों की अपेक्षा अधिक शिक्षा मिलती है। अमेरिका की कांग्रेस का वाशिंगटन की नाईं प्रत्येक मनुष्य सभापति नहीं हो सकता, न रानडे की नाईं हाईकोर्ट का जज अथवा अनेक संस्थाओं का प्रवर्त्तक हो सकता है; परंतु यह प्रत्येक साहसी आदमी के

लिये संभव है कि वह डूबते हुए को बचा ले। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य संसार के उन पदार्थों में से जिन्हें ईश्वर ने उसको प्रदान किया है, दूसरों को दे सकता है जैसा कि रानडे ने अपने समूचे पेड़े को मजदूरनी के बच्चे को दे दिया और आप आधा ही खाया। महापुरुषों के जीवन की छोटी कहानियाँ बड़े महत्त्व की होती हैं। इनके द्वारा सहस्रों मनुष्य सुमार्ग पर चल सकते हैं, धर्म का अवलंबन कर सकते हैं और जीवन का आदर्श जान सकते हैं।

---

( १७ )

## ज्ञान के लिये बलिदान

विद्यार्थियों को ऐसे लोगों का जीवनचरित अवश्य जानना चाहिए जो विद्या-प्राप्ति के लिये अपना जीवन दे देते हैं। आज सारे संसार में दक्षिणी ध्रुव के अनुसंधान-कर्ता स्काट साहेब की मृत्यु पर शोक मनाया जा रहा है। सभ्य जगत् की सभी पाठशालाओं के अध्यापक स्काट के उत्साह, अध्यवसाय और विद्यानुराग का गुणानुवाद अपने बालकों को सुना रहे हैं। स्काट इँगलैंड का रहनेवाला

था; परंतु जो लोग विज्ञान की उन्नति करते हैं वे किसी देश-विशेष के निवासी नहीं कहे जा सकते। ऐसे लोगों का जन्म चाहे जहाँ हुआ हो, वे मनुष्यमात्र की श्रद्धा के पात्र हैं।

बहुत से बालक जानते होंगे कि दक्षिणी ध्रुव कहाँ है। नक्शे या ग्लोब में नीचे की तरफ देखो, दक्षिणी ध्रुव है। यहाँ हमेशा जाड़ा रहता है। यहाँ पर न तो जमीन है, न पानी; समुद्र की लहरें बर्फ के पहाड़ के सदृश हैं। चारों तरफ बरफ़ ही बरफ़ दिखलाई देती है। यहाँ अँधेरा बहुत रहता है। कई महीने रात रहती है। इस स्थान पर आँधी बहुत चलती है जिसके साथ बर्फ के टुकड़े इधर उधर उड़ते हैं। जब आँधी आती है तब हवा में इतनी ठंडक होती है कि किसी जीवधारी का वहाँ जीवित रहना कठिन है।

तीन वर्ष हुए ऐसे स्थान में इँगलैंड से पाँच आदमी गए। लड़के आश्चर्य से पूछेंगे कि ऐसे देश में इन लोगों को जाने की आवश्यकता ही क्या थी। जहाँ जीवधारी लोग न रहते हों, जहाँ बर्फ की ज़मीन और बर्फ ही की आँधी चलती हो, वहाँ वे लोग किस लालच से गये? लड़कों को याद रखना चाहिए कि यह बात मनुष्य में स्वाभाविक है कि जितनी बातें उसके जानने के योग्य हों

उनको वह जाने । नए ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा मनुष्य मात्र में पाई जाती है । साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि संसार में कुछ मनुष्यों में यह बात स्वाभाविक होती है कि अपने को खतरे में डालें । हम लोगों में बहुत से लोग कठिनाइयों का सामना करने से भागते हैं । परंतु संसार में ऐसे बहुतेरे लोग भी हैं जिनका साहस, ज्यों ज्यों उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं, त्यों त्यों बढ़ता जाता है । तीसरी बात यह भी जानने योग्य है कि इस जगत् में जितने स्थान हैं उन सब की प्राकृतिक शोभा में विशेष वैलक्षण्य है । जिस देश में सदैव सर्दी रहती है, वहाँ के प्राकृतिक नियम विचित्र होते हैं । वैज्ञानिक का यह कर्तव्य है कि उन नियमों का अनुसंधान करे । बालको ! यदि तुम में नए स्थानों के देखने की अभिरुचि, नए ज्ञान की प्राप्ति के लिये उत्साह; कठिनाइयों का सामना करने में प्रेम और साहस के काम करने का हौसला उत्पन्न होगा तो निश्चय जानो तुम में से अनेक आविष्कारक, अनुसंधानकर्ता, विद्वान् और यशस्वी होंगे ।

इँगलैंड के ये पाँच वीर इस अज्ञात देश को एक जहाज पर रवाना हुए । जहाज का नाम रखा 'टेरा नोवा, जिसका अर्थ है 'नवीन भूमि' । इन पाँचों के नाम ये थे—

कप्तान स्टाक जो इन का नेता था, कप्तान ओट्स, लेफ़्टिनेंट बावर्स, डाक्टर बिलसन और इवान्स। इनके अतिरिक्त जहाज में बहुत से नौकर-चाकर थे। जितनी दूर तक हो सका ये लोग जहाज ले गए। जब ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ जहाज बर्फ में फँस गया, तब इन्होंने उसको छोड़ दिया और छोटी २ गाड़ियों में बर्फ के रास्ते वे ध्रुव की तरफ चले। वहाँ पहुँचकर अपनी पहुँच का चिन्ह बना दिया, जितनी बातें वहाँ जानने की थीं उनको जान भी लिया। तब वहाँ से वे इस आशा से फिरे कि वे जहाज पर पहुँचकर इँगलैंड वापस लौटेंगे, परंतु लौटने के साथ ही उनकी कठिनाइयाँ आरंभ हुई। सर्दी उनकी कल्पना से बहुत अधिक हो गई और उसके साथ ही आँधी भी शुरू हो गई। चारों तरफ बर्फ तो थी ही, अब आकाश से भी बर्फ की वर्षा आरंभ हो गई। इवांस, जो सब से अधिक बलवान था, बीमार पड़ा और बर्फीली ऊँची-नीची जगह में ठोकर खाकर सिर के बल गिरा और तुरंत उसके प्राण निकल गए।

इसके अनंतर कप्तान ओट्स जो फौजी अफसर था, बीमार पड़ा। उसके हाथ और पैर की उँगलियाँ गलकर गिर गई जिसके कारण उसको भयानक पीड़ा थी। उससे चला नहीं जाता था परंतु फिर भी बर्फ पर पैर घसीटता

हुआ वह चलता ही रहा । एक दिन भी उसने आह नहीं की, वह सदा प्रसन्न चित्त और आशावान् बना रहा । जब उसकी पीड़ा बढ़ने लगी तब उसको निश्चय हो गया कि वह अपने प्यारे देश को फिर नहीं देखेगा । रात्रि के समय एक दिन वह यह कहकर खेमे में सोया कि "अब इस संसार में मैं नही जगूँगा" परंतु दूसरे दिन वह जीवित था, उठते ही खेमे से उसने बाहर झाँक कर देखा । बाहर भयानक आँधी थी, हवा ठंडी और तीक्ष्ण थी; यह देखकर तुरंत उसने अपने तीनों मित्रों से कहा कि मैं बाहर जाता हूँ । और संभव है कि देर तक रह जाऊँ । वह जानता था कि मैं मरने जाता हूँ । उसके मित्र भी जानते थे कि अब वह नहीं लौटेगा, पर वह यह नहीं चाहता था कि उसकी मृत्यु कप्तान स्काट और दो मित्रों के सामने हो; क्योंकि वह समझता था कि इससे उन तीनों को अत्यंत क्लेश होगा । ओट्स की वीरता संसार के वैज्ञानिक इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी, उसके चले जाने के अनंतर तीनों मित्रों को निश्चय हो गया कि अब उनका भी काल आ गया । स्काट ने अपना समय अपनी यात्रा का संक्षिप्त विवरण लिखने में व्यतीत किया । उनके भोजन का सब सामान नष्ट हो गया । वे समझते थे कि उनके पास जो भोजन है वह इँगलैंड पहुँचने तक काम आवेगा, पर

आँधी ने कुछ भी न छोड़ा। फिर भी इन पुरुषों ने अपना साहस नहीं छोड़ा और धीरे धीरे वे आगे चलते रहे। नौ दिन तक आँधी बराबर चलती रही। इस अवस्था का वर्णन स्काट के शब्दों में ही करना उचित होगा—

"हम लोग निर्बल हो गए हैं; लिखना कठिन है। परंतु मुझे ऐसी यात्रा पर आने का कुछ भी शोक नहीं है, क्योंकि इस यात्रा ने हमें निश्चय करा दिया है कि अँगरेज़ लोग कठिनाइयों को सह सकते हैं, एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं और मृत्यु का सामना अत्यंत धैर्य के साथ कर सकते हैं।

"हमने अपने को खतरे में डाला; हम जानते थे कि कि हम अपने को खतरे में डाल रहे हैं। यहाँ आकर कुछ घटनाएँ ऐसी हुईं कि जिनसे हमारी कठिनाइयाँ बढ़ गईं, पर हमें इसकी कोई शिकायत नहीं। हम परमेश्वर की इच्छा के सामने सिर झुकाते हैं और अब भी इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि अंत समय तक धैर्य और साहस को नहीं छोड़ेंगे। हम इस यात्रा में अपना जीवन स्वदेश के मान के लिये प्रसन्नतापूर्वक देने को तैयार हैं। क्या हमारे स्वदेशबंधु इस बात का प्रबंध न करेंगे कि जिनकी जीविका हमारे ऊपर निर्भर है उनकी रक्षा हो। हम लोग जीवित रहते तो अपने साथियों की सहनशीलता,

वीरता और साहस की कहानी सुनाते जो प्रत्येक अँगरेज बच्चे का हृदय हिला देती। मेरा यह अधूरा लेख और हमारे मरे हुए शरीर इस कहानी को सुनाएँगे और निश्चयपूर्वक हमारा धनाढ्य और महत्त्वप्राप्त देश उन लोगों की रक्षा करेगा जो लोग हमारे ऊपर निर्भर हैं।"

यह लेख २५ मार्च सन् १९१२ ई० को लिखा गया। इसके अनंतर तीनों वीर मृत्यु को प्राप्त हुए। इंगलैंड देश में इसका शोक समाचार पहुँचा। देश भर में शोक छा गया। बादशाह से लेकर साधारण मनुष्य तक ने इन वीरों के स्मारक में और इनके कुटुंब के पोषणार्थ थोड़ा बहुत धन दिया। धन्य वह देश जहाँ ऐसे वीर उत्पन्न हों, जो ज्ञान की वृद्धि के लिये अपना बलिदान करें।

---

( १८ )

## समय का उपयोग

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि देकर उसका सबसे बड़ा उपकार किया है। उसने बुद्धि-बल से जितने आविष्कार किए हैं उनमें समय-विभाग सबसे श्रेष्ठ है। प्रकृति देवी रात दिन काल-चक्र के गीत सुनाती रहती है। सूर्य,

चंद्र और तारागण का उदय और अस्त, ऋतुओं का परिवर्तन, फलों का उत्पन्न होना और पकना, मनुष्यों के शरीर और बुद्धि का बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था के अनुसार विकास, इत्यादि पुकार-पुकार कर समय के महत्त्व का प्रमाण दे रहे हैं।

हम लोगों के लिये समय बड़ा ही बहुमूल्य है। संसार में कोई भी वस्तु इससे श्रेष्ठ नहीं है। कोई धनवान आदमी यदि अपने मुनीम के पास कुछ रुपया रखता है तो उसको एक एक पैसे के खर्च का हिसाब देना पड़ता है। तो क्या धन से भी अधिक मूल्यवान समय के प्रयोग का उत्तरदायित्व हमपर कुछ कम है ?

समय का उपयोग और दुरुपयोग मनुष्य को सभ्य और असभ्य, उत्कृष्ट और निकृष्ट, उन्नतिशील और पतित बनाता है। आर्यावर्त के प्राचीन पूज्य ऋषियों ने सोने, उठने, संध्योपासना, भोजनादि के लिये ठीक ठीक समय निश्चित कर दिया था। वर्तमान काल में अनेक जातियों में ये सब काम समय पर होते हैं, जिससे वे कार्य-कुशल समझी जाती हैं। भारतवासियों का ध्यान इस ओर इस समय कम है। हम लोगों के सोने-जागने, मिलने-मिलाने, पढ़ने-पढ़ाने, खेलने-कूदने का कोई नियमित समय नहीं है।

समय पर काम करने से हमारा स्वभाव शांतिमय

और क्रमप्रिय हो जाता है। इससे काम भी दूना होता है, काम करने में समय भी कम लगता है। समय पर काम करनेवाला आदमी काम से नहीं घबड़ाता। उसका समय रबर की तरह बढ़ता जाता है, उसके ऊपर काम पर काम लाद दिया जाता है और वह हँसते हुए सब काम कर डालता है। क्रम से काम न करनेवाला आदमी सदा यही कहता हुआ सुनाई पड़ता है "क्या करें", "कितना काम करें", "कब करें", "काम से तो मरे जाते हैं" इत्यादि।

कार्य-क्षेत्र में समय पर जाना चाहिए, पीछे जाने से लज्जा, घबराहट और बेचैनी पैदा होती है। पीछे आनेवाला सदा पिछड़ा रहता है, जिसके कारण उसका काम अच्छा नहीं होता और पूरा भी नहीं होने पाता। ठीक समय जानने के लिये घड़ी से बड़ी सहायता मिलती है। पर बिना घड़ी के भी मनुष्य समय पर काम कर सकता है। जो आदमी सदा ठीक समय पर उठता है उसकी नींद उसी समय आप ही आप खुल जाती है। इसी प्रकार समय पर नींद आना; भूख प्यास लगना, व्यायाम करने की इच्छा होना, इत्यादि —ये सब स्वाभाविक हो जाते हैं। जिस घड़ी की प्रति दिन या प्रति सप्ताह ( जैसी घड़ी हो ) ठीक समय पर चाभी दी जाती है वह जल्दी नहीं बिगड़ती। नियमित रूप से जीवन निर्वाह करनेवाले लोग अस्सी-नब्बे और सौ

वर्ष तक जीते रहते देखे गए हैं। ऐसे लोग जो मनमाने समय पर अपना सब काम करते हैं, कुसमय काल के कवल बन जाते हैं। अकाल मृत्यु प्रायः अनियमित जीवन का परिणाम होती है।

मनुष्य को अपनी दिनचर्या बनानी चाहिए और यथासंभव उसपर चलना चाहिए। साधारणतः सात घंटे से कम नहीं सोना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठना चाहिए। प्रातःकाल उठना अत्यंत लाभदायक है। इस देश की सदा से यह विशेषता रही है। यहाँ सूर्योदय से पूर्व की प्राकृतिक छटा अत्यंत हृदयग्राही और धार्मिक भाव उत्पन्न करनेवाली होती है। सबेरे टहलने जाइए तो मालूम होता है आकाश अमृत बरसा रहा है। सबेरे उठनेवालों को जल्दी सोना चाहिए। देर करके सोना और जल्दी उठना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। नींद खुलते ही बिछौने से कूद जाना चाहिए। जागने पर करवट बदलते रहने से आलस्य बढ़ता है और समय नष्ट होता है। उठते ही शौच, स्नान आदि शारीरिक नित्यक्रिया कर डालनी चाहिए। इसमें ढिलाई करने से सुस्ती मालूम होने लगती है और बुद्धि मलिन हो जाती है।

व्यायाम के लिये सब को समय अवश्य निकालना चाहिए। जिनका काम लिखने-पढ़ने और बैठे रहने का है

उनको व्यायाम के लिये अधिक समय देना चाहिए। आमोद-प्रमोद, हँसी-ठट्ठा, खेल-कूद मनुष्य की आयु बढ़ाता है इसलिये हमारी दिनचर्या में इनके लिये अवश्य स्थान होना चाहिए। गीत गाना या सुनना तथा बच्चों, फूलों और पशु-पक्षिओं से दिल बहलाव आत्मा को प्रफुल्लित करता है।

जब काम करने बैठो, चित्त को एकाग्र कर लो। पहले उस काम को करो जो सब से अधिक आवश्यक हो। एक काम समाप्त करके दूसरा उठाना चाहिए।

कहा जाता है कि अरब देश में एक नौकर था। उसकी मालकिन ने उसको आग लाने के लिये भेजा। जब वह बाहर गया, उसको एक काफिला मिला जो मिश्र देश की ओर जा रहा था। उनसे बातें करता हुआ वह दूर निकल गया। बहुत दिनों बाद उसे यह बात याद आई कि घर पर आग पहुँचानी है। पड़ोसी से आग लेकर जब वह घर पहुँचा तब मालकिन मर चुकी थी।

संसार में वहुत से लोग एक काम पूरा होने से पहले ही दूसरा काम करने लगते हैं और पहले को भूल जाते हैं। बहुत देर के पीछे जब पहले काम की याद आती है तब पछताते हैं और हाथ मलते रह जाते हैं। हमारे विद्यार्थियों में यह दोष बहुत है।

जिस काम को अभी कर सकते हो उसको मत टालो। तकाज़ा करनेवाले को दूसरे दिन मत बुलाओ।

जिससे जिस समय मिलने का वचन दो उस समय उससे अवश्य मिलो। समय देकर काम न करना एक प्रकार का मिथ्याभाषण है। वक्त की पाबंदी न करना भी झूठ है।

जो लोग समय को बहुमूल्य समझते हैं, वे समय बचाने का उपाय करने में असंभव को भी संभव कर डालते हैं। अमेरिकावालों को ऐटलांटिक महासागर से पैसिफिक महासागर की ओर जाने में हजारों मील का चक्कर लगाना पड़ता था। अब वहाँ वालों ने पनामा स्थान में चालीस मील लंबी एक नहर खोद दी है जिसके द्वारा अमेरिका के पूर्वी भाग और यूरप से पैसिफिक महासागर में जाने का मार्ग बहुत सुगम हो गया है।

इसी प्रकार स्वेज की नहर द्वारा आने से यात्रियों के कई महीने बच जाते हैं। रेल, जहाज, वायुयान के आविष्कार सिद्ध करते हैं कि मनुष्य काल को बस कर सकता है।

हम सबको प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान हममें ऐसी शक्ति दे कि हम थोड़े समय में अधिक कार्य कर

सकें और अपनी सांसारिक लीला को कमर कसे हुए हँसते-खेलते समाप्त करें ।

---

( १९ )

## आत्म-परीक्षा

हम सब लोग दूसरों की परीक्षा लेने में सदा तत्पर रहते हैं । साधारण वार्तालाप में भी हम लोग दूसरों के दोषों की चर्चा किया करते हैं । जरा अपनी तरफ भी देखना चाहिए । शीशे में मुँह देखकर जैसे हम अपने बाल सँवार लेते हैं और चेहरे को साफ कर लेते हैं, वैसे ही थोड़ी देर के लिये एकांत में बैठकर हमें अपनी आत्मा को भी शुद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए । यदि अपने कामों की दिनचर्या लिखी जाय तो आत्मोन्नति में बड़ी सहायता मिले । यह काम छोटी अवस्था से ही प्रारंभ करना चाहिये ।

एलेग्जेंडर फाई नाम की एक बालिका इँगलैंड के एक नगर में रहती थी । उसको घोड़े पर चढ़ने, नाचने, गाने और अच्छे कपड़े पहनने का बड़ा शौक था । बातें भी वह ऐसी करती थी, जो व्यंग्य से पूर्ण होती थीं । बड़ों की

बातें तो वह तुरंत काट देती। पर उसमें एक गुण था। वह अपनी दिनचर्य्या लिखा करती थी। माँ की लाड़ली लड़की थी। उसका जन्म-दिन बड़े समारोह से मनाया जाता था। वह भी बड़ी प्रसन्न हुआ करती थी और उस दिन उसमें अभिमान की मात्रा कुछ बढ़ जाती थी। इसी तरह सत्रहवीं वर्ष गाँठ आई और वह अपनी दिनचर्या लिखने बैठी। सोचने लगी, "हा! मेरे जीवन के सोलह वर्ष बीत गए। मैंने अपने को उन्नत करने की चेष्टा नहीं की। मैंने तमोगुण का प्रभुत्व अपने ऊपर बढ़ने दिया। अपनी त्रुटियों को जानती हुई भी मैंने उनको सुधारने का प्रयत्न नहीं किया। राग-रंग में मेरा मन लगता है। बच्चों पर मुझे क्रोध आ जाता है। बड़ों की बातें मैं काट देती हूँ। बातचीत करने में मुझे अपनी तरफ से नमक मिर्च लगाने की बान-सी पड़ गई है। परंतु अब मैं अवश्य बदलूँगी, अधिक ज्ञान प्राप्त करूँगी।" इसी प्रकार के विचार उसके चित्त में आए और उसने अपनी दिनचर्या में उनका उल्लेख भी कर दिया। उस दिन से उसने अपनी दिनचर्या की जाँच शुरू कर दी। वह सोचने लगी कि नाच-तमाशे के बदले कुछ अच्छे कामों में मन लगाना चाहिए, पर किस काम में मन लगावे यह वह स्थिर न कर सकी।

एक दिन जाड़े में उसने जंजीर से बँधे हुए कुछ कैदियों को सड़क पर पत्थर तोड़ते हुए देखा। पानी बरस रहा था, पर ये कैदी काम कर रहे थे। उसका दिल धड़कने लगा। दिन-रात बेड़ी पहने हुए कैदी ही उसको दिखलाई देने लगे। इसके पश्चात् उसका जीवन ही बदल गया। दुखियों का दुःख दूर करना उसके जीवन का उद्देश्य हो गया। जेलखानों में जाकर वह स्त्रियों और मर्दों के साथ ईश्वर की उपासना करती। कैदियों को धर्मग्रंथ पढ़कर सुनाती, कारीगरों के सुधार पर आंदोलन करती, पागलखानों में जाकर अपने हाथ से पागलों को भोजन देती। उसने अनेक नगरों में भ्रमण किया और वहाँ के जेलखानों को देखा। एक बार वह फ्रांस के सम्राट् के पास मिलने गई और उसने कहा—

"तू जब जेलखाने बनवाता है तब यह समझ लिया कर कि इनमें तेरे पुत्र और पुत्रियाँ आकर रहेंगी।"

आत्म-परीक्षा ने आमोद-प्रमोद से निकालकर इस बालिका को परोपकारी बना दिया। जिसको भड़कीले कपड़े पहनने का शौक था, वही कैदियों के वास्ते कपड़े सिया करती थी। जिसके गले से सादा खाना नहीं उतरता था वह कभी-कभी गरीबों का दुख देखकर उपवास कर बैठती थी।

आत्म-परीक्षा की आदत सबको डालनी चाहिए। हम लोगों के हृदय में खजाना है। उसको खोलकर देखते रहना चाहिए। उसमें बड़े-बड़े रत्न भरे पड़े हैं। उधर ध्यान जाते ही वे निकलने लगते हैं।

---

( २० )

## स्वतंत्रता और सेवा

'स्वतंत्रता' शब्द जीवधारी मात्र को प्रिय है। कोई भी नहीं चाहता कि वह किसी प्रकार के बंधन में पड़े। यदि दैवात् बंधन में पड़ भी जाय तो प्रत्येक जीव उस बंधन को तोड़कर निकलना चाहता है। आत्मा पराधीन रहना नहीं चाहती। यदि वह किसी जंजीर में बँध जाती है तो उसे तोड़ डालने के लिये छटपटाती है। आत्मा बलवान् होती है तो जंजीर टूट जाती है। बहुत से जीवधारी जीवित रहते हुए भी निर्जीव मालूम होते हैं, क्योंकि उन्हें बंधन में रहने की आदत पड़ गई है। तोता जब पिंजरे में बंद किया जाता है तब बड़ा कोलाहल मचाता है, पिंजरे से बाहर निकलने के लिये तड़पता है। पर थोड़े ही दिनों

में उसे पिंजरे में रहने का अभ्यास पड़ जाता है और वह उसके अंदर से ही मीठे मीठे शब्दों से लोगों को प्रसन्न करने लगता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति वर्षों तक दास-वृत्ति में रहता है उसके मुँह से अथवा लेखनी से ताबेदार, हुजूर, फिद्वी, खाकसार, इत्यादि शब्द निकला करते हैं। जब किसी बड़े आदमी के सामने वह जाता है, कमर झुका लेता है, आवाज धीमी कर लेता है और उसके सामने चेहरे पर बनावटी नम्रता ले आता है।

'सेवा' शब्द प्रथम शब्द के विपरीत किसी को प्यारा नहीं। कोई नहीं चाहता कि दूसरे की सेवा करे, भिख-मंगा भी नौकरी करने से इन्कार करता है। गाँव के लोग खेती से थोड़ा बहुत पैदा करके अपने ओसारे में चारपाइयाँ बिछाकर निर्द्वंद्व सोते हैं। कुटुंबियों की संख्या बढ़ती जाय तब भी कोई परवाह नहीं, बाहर दूर जाकर दासवृत्ति नहीं करेंगे।

मनुष्य जाति के शब्द-कोष में ये दोनों शब्द बड़े विचित्र हैं। एक अमृत समझा जाता है, दूसरा विष। पर ये दोनों शब्द अत्यंत गंभीर हैं। जो स्वतंत्रता मनुष्य को स्वेच्छाचारी बनाती है वह मनुष्य जाति के लिये हानिकारक है। जो सेवाभाव रोगियों की शुश्रूषा के लिये उत्पन्न होता है वह मनुष्य को देवतुल्य बनाता है।

हर प्रकार की स्वतंत्रता श्रेयस्कर नहीं है। हर प्रकार की सेवा घृणित नहीं है।

संसार के सब प्राणियों में मनुष्य की ही रचना ऐसी है जिसका सिर सदैव ऊपर रहता है। आकाश की ओर देखने में उसे कोई कष्ट नहीं होता। इस प्रकार परमेश्वर ने हमको शिक्षा दी है कि हम अपना आदर्श ऊँचा रखें। जैसा जिसका आदर्श होता है वैसा ही उसका चरित्र बनता है। जैसा हमारा विचार होगा वैसा ही हमारा कर्त्तव्य होगा। यदि हमारे विचार उच्च होंगे, यदि हम में आत्ममर्यादा, आत्मसमर्पण, स्वाभिमान, स्वावलंबन आदि गुण होंगे तो हमारे सब कर्तव्य हमको उन्नति की ओर ले जायँगे। इसके विपरीत यदि हमारे विचार शिथिल होंगे, हममें स्वार्थ, द्वेष, ईर्ष्या, इत्यादि अवगुण होंगे तो हम अवश्य ही अवनति की ओर जायँगे।

उन्नति-अवनति अपने अपने विचारों पर निर्भर है। भारतवासी आजकल भाग्य के भरोसे रहते हैं। तनिक भी दुःख पड़ा, वस कह बैठते हैं 'इससे तो मरना अच्छा'। परिणाम यह हुआ है कि यद्यपि वेदों ने—जिनका वे आदर करते हैं—सौ वर्ष से कम मनुष्यजीवन की अवधि नहीं बतलायी है, तथापि अधिकांश भारतवासी ५० वर्ष भी नहीं जीते। ४० वर्ष के लोग अपने को

बुड्ढा समझने लगते हैं। यह भाग्य की अधीनता है।

वर्त्तमान समय में स्वतंत्रता की भावना बढ़ती जाती है। सामाजिक, राजनीतिक, और शिक्षा-संबंधी उन्नति जो वर्त्तमान काल में देखने में आती है उसका एकमात्र यही कारण है। पाठशाला में विद्यार्थियों को पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता है। अच्छे स्कूलों में दंड देने का नियम बदल रहा है। पढ़ाई के बीच में विश्राम का समय प्रायः सभी स्कूलों में मिलता है। शिक्षाप्रणाली ऐसी रोचक बनाई जा रही है कि सभ्य देशों में बालक अपने मन से स्कूल दौड़े चले जाते हैं। घर की अपेक्षा पाठ-शाला में उनका अधिक मनोरंजन होता है। पहले गुरु के सामने शिष्य डरते हुए जाते थे। (यहाँ उस समय से तात्पर्य नहीं है जब गुरुकुलों या ऋषिकुलों में शिक्षा हुआ करती थी।) बालकों को दंड भी अधिक दिया जाता था। बालिकाओं को तो कोई पढ़ाता ही नहीं था। अनेक छोटी जातियों में शिक्षा का प्रचार बुरा समझा जाता था। पर अब इन सब बातों से विलक्षण परिवर्त्तन हो रहा है।

इस समय हम एक देश से दूसरे देश में स्वतंत्रता-पूर्वक जा सकते हैं। रेल, तार, जहाज इत्यादि द्वारा देशाटन में सुगमता होती जाती है। अब कोई किसी को विदेश जाने से रोक नहीं सकता। बिरादरी के दंड का

डर बहुत कम हो रहा है। अन्य देशों में कोलंबस, वास्कोडीगामा, स्टानली, स्काट आदि नए नए देशों में जाकर अनुसंधान करते हैं। संसार का व्यापार और वैज्ञानिक परिज्ञान इसी प्रकार बढ़ता जाता है। जब ऐसा कोई पुरुष स्वदेश में लौट आता है तो सहस्रों नर-नारी उसके स्वागत के लिये आते हैं। विद्या, व्यापार, कला-कौशल की उन्नति के लिये पहली आवश्यकता स्वतंत्रता की है।

वर्त्तमान काल में सेवा का भी भाव बदल रहा है। यदि कोई सरकारी नौकरी करता है तो वह यह समझता है कि मैं जनता का सेवक हूँ लेकिन पाँच घंटे दफ्तर में काम करने से मतलब है; उसके अनंतर मैं "वक्त का बादशाह" हूँ। पहले जमाने में 'नौकरी' करीब करीब गुलामी के बराबर समझी जाती थी। मालिक की मर्जी पर बड़े बड़े वजीरों को चलना पड़ता था। नियम और कायदे बादशाह बनाता था और जब चाहता था उनको तोड़ भी देता था। वर्त्तमान काल में बादशाह भी नियम-बद्ध है, क्योंकि आजकल इस सिद्धांत का अवलंबन हो रहा है कि मनुष्य अपने कार्य-साधन में स्वतंत्र है, पर सर्वहितकारी कामों में परतंत्र है। यही मत हमारे प्राचीन काल के ऋषियों का भी था। प्रत्येक मनुष्य को अधिकार

है कि परमेश्वर, सृष्टि, आत्मा, इत्यादि गंभीर विषयों पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार करे परंतु किसी को यह अधिकार नहीं है कि चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों में स्वतंत्रता का उपयोग करे, क्योंकि ऐसा करने से सामाजिक नियम अस्तव्यस्त हो जायँगे, दुनिया में अमन-चैन नहीं रहेगा। ऐसी स्वतंत्रता, जिसमें सामाजिक हानि न हो, मनुष्य की अन्वेषण-शक्ति को बढ़ाती है। विचार करने की स्वतंत्रता रोक दी जाय तो संसार के सब वैज्ञानिक-आविष्कारों और नवीन दार्शनिक विचारों की उन्नति रुक जाय। वर्तमान काल के जितने प्रसिद्ध नास्तिक हुए हैं उन्होंने सामाजिक नियमों को नहीं तोड़ा। मिल, ब्राडला, स्पेन्सर, हक्साले नास्तिक तो थे पर वे बड़े सत्यवादी, दयावान, और मनुष्य मात्र के सेवक थे।

---

( २१ )

## उन्नति का मार्ग

उन्नति के अनेक साधन हैं पर इसके संबंध में भ्रम भी अनेक हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यदि भाग्य में बदा होगा, ललाट में लिखा होगा, प्रारब्ध अच्छा होगा तो उन्नति

अवश्य होगी। प्रारब्ध उस अग्नि के समान है जो काशी से गंगाजी के उस पार रात्रि के समय बालू में एक स्थान से दूसरे स्थान में दौड़ती हुई दिखलाई देती है। अपढ़ लोग उसे भूत समझकर उससे डर जाते हैं। प्रारब्ध भ्रम मात्र है। भाग्य, किस्मत, प्रारब्ध इत्यादि शब्दों के बदले 'कर्म' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यदि हमारे कर्म अच्छे होंगे तो अवश्य उन्नति होगी। उन्नति के लिये संग्राम की आवश्यकता है। घोर परिश्रम और अध्यवसाय से ही उन्नति प्राप्त हो सकती है। केवल धन से उन्नति नहीं होती। अनेक धनाढ्य मनुष्य समाज को कलंकित कर रहे हैं। उन्नति परमेश्वर की दी हुई शक्तियों के प्रयोग से प्राप्त होती है। हमारी प्रकृति में दैवी शक्तियाँ बंद पड़ी हैं। उनकी कुंजी हमारे हाथ में है। बस कुंजी ढूँढ़ लो, दरवाजा खुल जायगा। धन का अभाव उत्साह को न्यून नहीं करेगा। वह दया, उदारता और प्रेम उत्पन्न करेगा। घड़ी के कल पुर्जे घड़ी के अंदर होते हैं। उन्हीं के बल से वह चलती है। यदि अचानक संसार में कोई पुरुष बिना यत्न उन्नति करता भी है तो प्रथम तो ऐसे लोगों की संख्या कम है, दूसरे जब वे गिरते हैं तब मौत ही उनको असाध्य क्लेश और कठिन पीड़ा से बचा सकती है।

---

( २२ )

## ऊपर उठो !

एक मित्र ने मुझसे कहा कि मैं बड़ा दुखी हूँ, मेरे बराबर दुखी दूसरा नहीं मिलेगा; इसलिये मेरा उन्नति करना कठिन है। मैंने समझाते हुए उनसे कहा 'राइज अबव योर सराउन्डिंग्ज' अर्थात् अपने वातावरण से ऊपर उठो। जो पीछे हैं वे ही आगे जा सकते हैं। जो आदमी पीछे खड़ा रोता रहता है कि मैं तो पीछे रह गया, वह आगे नहीं जा सकता। रैदास चमार होकर भक्त बन गए, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई स्त्री होते हुए भी योद्धा हो गईं। योरप तथा अमेरिका के कई बड़े आदमी साधारण अवस्था से ऊँचे उठे। गारफील्ड सूअर चराता था, स्टैलिन का पिता जूता सीता था। एक अमेरिका का प्रेसिडेंट हुआ, दूसरा रूस को नया जीवन देनेवाला। रैमजे मैकडौनल अनाथ था; रात काटने के लिये भी कभी कभी उसको स्थान नहीं मिलता था; किसी दूकान के बाहर सड़क पर पड़ रहता तो पुलिस आकर उसको भगा देती। वही इँगलैंड का प्रधान मंत्री हुआ। इसलिये जिस वातावरण में पैदा हुए हो उसके ऊपर उठो, यह गुरु-मंत्र है। व्यभिचारी भी समय पाकर पुण्यात्मा बनते

देखे गए हैं। आत्म-परीक्षा द्वारा अपने को पहचानो। अपने दोष मत छिपाओ। उनको मान लो। दूसरों के दोष की ओर कम देखो और अपनी कठिनाइयों से मत घबराओ। उनको ऊपर उठने की सीढ़ी समझो। धीरे धीरे तुममें ऐसी शक्ति पैदा होगी जो तुमको आगे ले जायगी। तुमको चलना है दो मील। यदि तुममें एक मील चलने की भी शक्ति हो तो कमर कस लो। दूसरा मील अपने आप तय हो जायेगा। एक मील तुम अपनी शक्ति से चल तो लो, कोई अदृश्य शक्ति तुमको दूसरा मील भी पार करा देगी। विश्वास की आवश्यकता है। आगे कदम रखने की देर है। फिर क्या है। तुम अपने आप अपने वातावरण से ऊपर उठने लगोगे। आध्यात्मिक वायुयान तुमको जब ऊपर उठा ले जायगा तब नीचे की चीजें सब तमाशा मालूम होंगी। इसलिये—

"राइज अबव योर सराउन्डिंग्ज"

---

( २३ )

## नियमित जीवन

तच्चक्षुर्द्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः

शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् । युजुः, अ० ३६ । मं० २४ ॥

इस मंत्र का आर्य मात्र प्रति दिन पाठ करते हैं। इस मंत्र द्वारा संसार को एक विलक्षण शिक्षा मिलती है। यदि हम सर्वदा शुद्ध हृदय से इस बात की कामना करते रहें कि हम सौ वर्ष से पहले चोला नहीं छोड़ेंगे तो संभव नहीं कि संसार की कोई भी प्राकृतिक शक्ति इसमें बाधा डाल सके। जो मनुष्य कष्ट में पड़कर कहने लगता है, "इस क्लेश से तो मृत्यु अच्छी" अथवा "मुझे मौत भी नहीं आती", संभव नहीं कि वह सौ वर्ष तक जी सके। मनुष्य का दीर्घायु होना उसके मन की वृत्ति और उसके आदर्श की पवित्रता पर निर्भर है। क्रोधी, द्वेष रखनेवाला, धैर्य-हीन पुरुष बहुत नहीं जी सकता। गंभीर, ईश्वरभक्त, सदाचारी अधिक काल तक जीवित रह सकता है। एक स्त्री की कथा है कि उसका पति उसको जवानी में छोड़कर चला गया, पति के वियोग में वह पागल हो गई, परंतु पागलपन की अवस्था में भी वह यही समझती थी कि उसका पति उससे अत्यंत स्नेह रखता है और वह शीघ्र आकर उससे मिलेगा। उसका स्वागत करने के हेतु वह अपने बालों को खूब सँवारती, शरीर को स्वच्छ रखती, अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहनकर दिन में कई

बार शीशे में अपना मुँह देखती; हर घड़ी वह यही समझती कि अब मेरा पति आवेगा और मुझसे प्रेमपूर्वक मिलेगा। इसी विचार में उसको वर्षों बीत गए, यहाँ तक कि वह बुड्ढी हो गई, परंतु बुढ़ापे में भी न तो उसके बाल सफेद हुए, न उसके चेहरे पर झुर्रियाँ ही पड़ीं और न उसकी कमर झुकी। जो लोग उसको देखते और उसकी बातें सुनते, उनके चित्त पर तुरंत इस बात का प्रभाव पड़ता कि इस स्त्री के जवानी के चिह्न अब तक बुढ़ापे में भी वैसे ही पाए जाते हैं जैसे यौवनावस्था में थे। वह एक पल भी इस बात को नहीं भूलती कि उसका पति फिर आएगा जिसके लिये वह अपने को हर घड़ी तैयार रखती।

मन में विलक्षण जादू की शक्ति है। उपर्युक्त वैदिक मंत्र में इसी शक्ति के पैदा करने का साधन बतलाया गया है। यदि हम गद्गद् होकर सावधान चित्त से परमेश्वर से प्रार्थना करें कि हे ईश्वर! मैं सौ वर्ष तक जीऊँ, सौ वर्ष तक सुनूँ, बोलूँ और देखूँ तो कितने बल का संचार हमारी आत्मा में हो। संभव है, एक आदमी सौ वर्ष तक जिए, पर यदि वह बहरा हो जाय, अंधा हो जाय, उसके लिये बोलना कठिन हो जाय, तो ऐसा जीना किस काम का। इसीलिये इस मंत्र में शिक्षा है कि हम न केवल सौ वर्ष तक

जिएँ बल्कि सौ वर्ष तक हमारी सुनने की, बोलने की और देखने की इंद्रियाँ बलवान बनी रहें। परंतु इससे बढ़कर जो उपदेश हमको इस मंत्र में मिलता है वह यह है कि सौ वर्ष तक हम स्वाधीनता से (अ-दीनाः) जिएँ। अहा! कैसी अद्भुत शिक्षा है, कैसी विलक्षण, बल-संचारक ओषधि है! संसार में देखने में आता है कि बूढ़े लोगों को जब चलना पड़ता है तब लकड़ी या किसी मनुष्य के सहारे की आश्यकता पड़ती है। वे न तो अपने आप उठ सकते हैं, न चल सकते हैं। एक और भाव इस मंत्र में है। यदि हमें बुढ़ापे में जीविका के हेतु दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा तो हमारा जीना किस काम का।

किसी-किसी का विश्वास है कि मनुष्य के जीवन की सीमा तीन कोड़ी और दस अर्थात् सत्तर वर्ष है। विचार करने की बात है कि जिस देश में प्रति दिन परमेश्वर से सौ वर्ष तक निरोग रहते हुए जीने की प्रार्थना करते हैं वहाँ पचास वर्ष से अधिक बहुत कम लोग जीते हैं। पर जिन देशों में मनुष्य जीवन की अवधि सत्तर वर्ष बतलाई है उनमें हजारों आदमी सत्तर वर्ष से बहुत अधिक जीते हैं। इसका क्या कारण है? विचार करने से प्रतीत होगा कि इसका मुख्य कारण मन की वही शक्ति

है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। भारत-संतान एक ओर तो 'पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं' कहती है, दूसरी ओर संसार को मिथ्या मानती है। जिधर जाइए, यही आवाज सुनाई देती है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा। लोग कहते हैं कि जो जवानी में मर जाय वह प्रायः भला आदमी होता है। भलों को जल्दी मौत आ जाती है और बुरों को मौत भी नहीं आती। बस इसी प्रकार के विचार वर्तमान समय में सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं। जिसको देखिए हर वक्त शिकायत ही करते पाइएगा। किसी के जीवन का कोई उद्देश्य नहीं, किसी का कोई आदर्श नहीं। चालीस वर्ष के ऊपर अवस्था हुई और कहने लगे कि बस अब थोड़े दिन और जीना है।

इसके विपरीत अँगरेजों को लीजिए; हर एक बच्चा गाता फिरता है—

'लाइफ इज रियल, लाइफ इज अर्नेस्ट'

किसी अँगरेज को उलाहना देते या शिकायत करते नहीं पाइएगा। यही हाल अन्य प्रगतिशील देशों के लोगों का है। हर एक मनुष्य समझता है कि वह अकेला संसार की काया पलट सकता है। इस प्रकार के आदर्श का

उसके दैनिक जीवन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। प्रातःकाल से सायंकाल तक उसका एक पल भी व्यर्थ नहीं जाता। महीनों पहिले से कार्यक्रम बन जाता है और उसमें एक मिनट का भी अंतर नहीं पड़ता। परिणाम यह होता है कि वे लोग सदा काम में लगे रहते हैं। परनिंदा, किस्मत की दुहाई, अधैर्य होना, ये सब आलस्य के फल हैं। जब आलस्य हमारे रोम रोम में प्रवेश कर गया तब हमारा आदर्श कैसे ऊँचा हो सकता है। जब तक हमारा आदर्श उच्च नहीं होगा तब तक यदि हम दिन भर इस मंत्र को रटा करें तब भी उसका कोई फल न होगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि अन्य सभ्य देशों के अग्रगण्य लोग अत्यंत पुरुषार्थी होकर अस्सी और नब्बे वर्ष तक जीवित रहते हैं और भारतवर्ष के प्रायः सभी महानुभाव थोड़े ही दिनों में संसार से चल बसते हैं। बिजमार्क, ग्लैडस्टन, मौरले आदि बुड्ढे होकर मरे परंतु भारतवासी रानडे, कृष्णस्वामी, गुरुदत्त प्रभृति प्रायः यौवनावस्था ही में संसार से सिधारे। कोई नहीं कह सकता कि इन महानुभावों के आदर्श उच्च नहीं थे। फिर क्या कारण है कि भारतवर्ष के उच्च आदर्शवाले लोग परिश्रमी और बलवान होते हुए भी अपने जीवन की वैदिक सीमा तक नहीं पहुँचते। इसका उत्तर यह है कि

साधारणतः एक व्यक्ति अपने कर्मों का फल तो भोगता ही है, उस जाति के कर्मों का भी फल भोगता है जिसमें वह पैदा होता है। यदि रानडे और गुरुदत्त इँगलैंड या जरमनी में पैदा होते तो अवश्य ही वैदिककाल की आयु पाते। चाहे कोई कितना ही प्रतिभाशाली पुरुष हो, कितना ही परिश्रमी हो, उसके आदर्श कितने ही ऊँचे हों, परंतु यदि उसका जन्म बाल्यावस्था में विवाहित माता से हुआ हो, उसका पालन-पोषण ऐसे कुटुंब में हुआ हो, जहाँ बच्चे जाति की संपत्ति, पूँजी न समझे जाते हों, उसका पढ़-लिख जाना माता-पिता के परिश्रम और फिक्र का फल न हो और कार्यक्षेत्र में आकर उसको विश्राम न मिले तो उसका दीर्घजीवी होना संभव नहीं। ग्लैडस्टन समय पर भोजन करते थे, समय पर व्यायाम करते थे, लिखने-पढ़ने का भी उनका समय बँधा था, उनसे मिलने-जुलने भी लोग नियमित समय पर ही आते थे। जिस काम को वे उठाते उसमें उनका हाथ बटाने के लिये उन्हें सुयोग्य सहयोगी मिल जाते थे। हमारे देश में नेताओं से लोग हर समय मिलने आ जाते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि उनके सोने या खाने या पढ़ने का समय तो नहीं है। बेचारे रमेशचंद्र दत्त ग्रंथ लिखने के लिये अपने सोने के समय में

से काट छाँटकर समय निकालते थे। कभी-कभी उनको लिखते ही लिखते सवेरा हो जाता था। भला कोई आश्चर्य की बात है कि ऐसे लोग दीर्घायु न हों।

हमें इस वैदिक मंत्र के गूढ़ अर्थ को समझना चाहिए, उसपर मनन करना चाहिए, उसके अनुसार अपना जीवन सुधारना चाहिए और अपने आदर्श उच्च करने चाहिएँ। प्रत्येक व्यक्ति को संयम के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करने के अतिरिक्त अपनी जाति के सुधार का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि किसी जाति में प्रभावशाली, प्रतिभाशाली, दीर्घायु, सदाचारी तथा ऐश्वर्यवान् पुरुषों का उस समय तक सच्चा आदर नहीं हो सकता, जब तक समस्त जाति के आदर्शों में शुभ परिवर्तन न हो। किसी मनुष्य अथवा जाति के केवल लंबे अस्तित्व का ही महत्त्व नहीं है, उसके उत्कृष्ट कार्य ही उसको गौरव प्रदान करते हैं।

---

( २४ )

# स्मृति ( याददाश्त )

भारतवासी वैज्ञानिकों में डाक्टर इंदु माधव मलिक एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने विविध विषयों में अनेक परीक्षाएँ दी थीं। कभी कानून की परीक्षा दी, कभी इंजिनियरी की और कभी डाक्टरी की।

प्रयाग में रायबहादुर पंडित सर सुंदरलाल बड़े प्रतिष्ठित वकील थे। उनको कानूनी किताबों के पृष्ठ तक याद रहते थे। किसी पुराने मुकदमे का जिक्र कीजिए, वे उसका सारांश तुरंत बतला देते थे।

मद्रास में एक शतावधानी थे। वे एक ही समय में सौ कामों में अपना ध्यान जमा सकते थे। एक ओर शतरंज, दूसरी ओर ताश खेलते रहते और तीसरी ओर समस्या-पूर्ति करते चलते, इत्यादि। सोचना चाहिए कि ऊपर लिखे हुए गुण इन महानुभावों में कैसे आए।

ईश्वर ने मनुष्य को जो अनेक अद्भुत शक्तियाँ दी हैं, उनमें से एक का नाम धारणाशक्ति या स्मृति है। यह यथार्थ में अद्भुत शक्ति है। इसकी विचित्रता समझ में नहीं आती। कभी कल की बात याद नहीं रहती और कभी बरसों पहले की बात तुरंत याद आ जाती है।

कभी किसी घटना की आवश्यक बातें ही याद रह जाती हैं। किसी दिन अपने आप ही पुरानी बातें याद आने लगती हैं। कभी जरा सिर खुजलाइए और भूला हुआ नाम याद आ जाता है।

विद्यार्थियों को इस विलक्षण शक्ति की वृद्धि के कुछ उपाय अवश्य जानने चाहिए, क्योंकि उनकी उन्नति का यह एक बड़ा साधन है। याद रखना चाहिए कि यह शक्ति दवा खाकर नहीं बढ़ सकती। हम लोग कभी-कभी 'मेमोरी पिल्' के विज्ञापन पढ़ते हैं, जिनमें लिखा रहता है कि अमुक गोली के खाने से किताब की किताब याद हो सकती है, इत्यादि। यह सब धोखेबाजी है।

अच्छी याद के लिये पहली बात अच्छा स्वास्थ्य है। रोगी को बातें जल्दी याद नहीं आतीं। अच्छा स्वास्थ्य रहता है नियमित व्यायाम से, शुद्ध वायु के सेवन से, शुद्ध और पर्याप्त भोजन और वस्त्र से। यदि हम चाहते हैं कि हमारी स्मृतिशक्ति ठीक रहे तो पहले हमें अपना शरीर स्वस्थ रखना आवश्यक है।

दूसरी आवश्यक बात चित्त की ताजगी है। थके हुए आदमी को पुरानी बातें जल्दी याद नहीं आतीं। सबेरे के समय ताजगी रहती है। उस समय बातें जल्दी याद आती हैं। जवानी में बुढ़ापे की अपेक्षा ताजगी अधिक

रहती है, इसलिये जवान आदमी की याद बुड्ढों से अच्छी होती है। हम लोगों को प्रयत्न करना चाहिए कि प्रातः-काल उठें और पठन-पाठन का कार्य उसी समय करें। ऐसा करने से हमारा पाठ हमको कभी नहीं भूलेगा।

स्मृतिशक्ति की वृद्धि के लिये ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक है। अनुभवी पुरुष इस बात को जानते हैं कि वीर्य की रक्षा न करने से मानसिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। भोग-विलास में रहनेवाला विषयी पुरुष साधारण बातें भी याद नहीं रख सकता। विद्यार्थी को ब्रह्मचारी होना चाहिए, नहीं तो उसके लिये विद्या का उपार्जन करना कठिन है।

जो विषय हमें याद करना है उसमें हमको अनुराग होना चाहिए। जिस विषय में हमको अनुराग नहीं वह याद नहीं रह सकता। कन्याएँ अपनी गुड़ियों के संबंध की बातें स्वतः याद रखती हैं, पर उनके लिये क्रिकेट के नियम याद रखना कठिन है। खिलाड़ी लड़कों को खेल नहीं भूलता, पर इतिहास की तारीखें भूल जाती हैं। इसलिये अच्छे अध्यापक लोग पढ़ाने में ऐसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं जिसमें विद्योपार्जन पहाड़ की चढ़ाई की तरह कठिन न मालूम हो। पढ़ाई रोचक होनी चाहिए। पुस्तकों में चित्र होने चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थियों में

विद्या के लिये अनुराग उत्पन्न होगा और जिस चीज में अनुराग हो वह स्वयं याद हो जायगी।

स्मरणशक्ति के लिये चित्त का एकाग्र होना भी आवश्यक है। जो घटना एकाएक हमारे ध्यान को एकाग्र कर देती है वह कभी नहीं भूलती। यदि तोप का गोला हमारे सामने छूट जाय तो हमारा सब ध्यान उसी ओर झुक जायगा और यह घटना जन्म भर याद रहेगी। अच्छे अध्यापक श्यामपट्ट द्वारा इसीलिये शिक्षा देते हैं कि जब पाठ श्यामपट्ट पर लिखा जाता है तब सब लड़कों का ध्यान एक ओर जम जाता है। श्यामपट्ट पर जब पाठ लिखा जाता है तब विद्यार्थियों की चार इंद्रियाँ काम में आती हैं। आँखें उसी तरफ देखती हैं, कान उसी तरफ लगे रहते हैं, क्योंकि अध्यापक जो कुछ लिखता है उसको पढ़ता और समझाता जाता है, हाथ हमारा अपनी कापी पर उसी की नकल करता चलता है और हमारा मुँह उसी को दुहराता है।

किसी बात के बार-बार कहने से भी स्मृतिशक्ति बढ़ती है। किसी शब्द को याद करना हो तो उसको कई बार दुह-राने से वह याद हो जाता है। किसी ऐतिहासिक घटना को याद रखना हो तो उसे पढ़कर अपने मित्र से कह डालो। दो एक बार ऐसा करने से वह कभी नहीं भूलेगी। किसी

बात को स्मरण रखने के लिये उसे दुहराना बड़ा उपयोगी है। परंतु बहुधा लोग रटने को ही दुहराना समझते हैं। यह भूल है। रटना बिना समझे होता है और यह बुरा है। व्याकरण की किसी बात को हजार दफा रटना अपनी मस्तिष्क-शक्ति को ढीला करना है। किसी बात को पहले अच्छी तरह समझ लेने से फिर उसके याद रखने में देर नहीं लगती। अधिक से अधिक दस बार उसको दुहराना काफी है।

स्मृति को एकांत-सेवन और मौन साधन से बड़ा लाभ होता है। जो विद्यार्थी पेड़ के नीचे अथवा नदी के तट पर अथवा किसी एकांत कुटी में बैठकर पढ़ता है उसको पढ़ी हुई बातें जल्दी याद हो जाती हैं और फिर नहीं भूलतीं। तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार का कोलाहल, शोर स्मृति के लिये बुरा है। यदि किसी विद्यार्थी के घर में एक ही कोठरी हो और उसी में घर के सब लोग रहते हों तो उसको चाहिए कि उसी कोठरी के एक कोने में परदा लगा ले, जिसमें उसका ध्यान न बटे और उसको थोड़ा सा एकांत मिल जाय।

इन सब उपायों के अतिरिक्त और बहुत से छोटे-छोटे उपाय हैं, जिनसे धारणाशक्ति को सहायता मिलती है। यह बात तो सब को मालूम है कि गद्य की अपेक्षा पद्य

शीघ्र याद हो जाता है। इसलिये कभी-कभी कठिन बातों की तुकबंदी कर देने से वे आसानी से याद हो जाती हैं।

अँगरेजी शब्द असैसिनेशन ( Assassination ) की वर्तनी बहुधा अँगरेजी पढ़नेवाले भूल जाया करते हैं। यदि वे इतना याद रक्खें कि इस शब्द के आदि में 'दो गधे' हैं अर्थात् 'आस' शब्द दो बार आता है तो वे उसकी वर्तनी कभी न भूलें। इसी प्रकार हर एक कठिन शब्द में कोई याद रहनेवाली बात निकाल लेना कठिन नहीं है।

इतिहास का सन् याद रखना बड़ा कठिन है। इसके लिये कई उपाय सोचे गए हैं। सन् याद रखने का उपाय यह है कि अपनी कापी के एक पृष्ठ को शताब्दी मान लो और जिस क्रम से सब घटनाएँ हुई हों उसी क्रम से उनको साफ साफ एक दूसरे से दूर दूर, जिस शताब्दी से उसका संबंध हो उसी पृष्ठ में लिख डालो। पहली आवृत्ति में केवल शताब्दी क्रम से घटनाओं को याद कर डालो। फिर ठीक ठीक सन् याद रखना कुछ कठिन नहीं मालूम होगा।

ईश्वर ने संसार में अनेक जीव और अनेक पदार्थ उत्पन्न किए हैं। उनमें से एक मनुष्य है। मनुष्य के शरीर में अनेक अंग हैं। उनमें से एक मस्तिष्क है। इस छोटे से

मस्तिष्क में संसार भर का ज्ञान बंद किया जा सकता है। कैसी आश्चर्य-जनक यह बात है।

किसी घने शहर में एक बड़ा भारी मकान था। चारों तरफ उसमें कोठरियाँ थीं, जिनमें से किसी में असबाब भरा हुआ था और किसी में लोग ठहरे हुए थे। एक कोने में बंद दरवाजा था। उसको खोलते ही घर में एक वाटिका दिखाई दी। उसमें अनेक सुहावने पेड़ थे, सुंदर सुगंध-युक्त फूल थे और चित्त को आकर्षित करनेवाले झरने थे। ठीक यही अवस्था हमारी स्मरणशक्ति की है। इसके दरवाजे को खोल देने से हमको उच्च भावों की स्मृति होती है, हमारे ऐसे प्यारे संबंधियों और मित्रों की याद आती है जिनके जीवन ने शायद हमारे जीवन में नवजीवन संचार किया हो। हमारी माता, हमारे पिता, हमारी भूलें और हमारे साहस के कार्य याद आते हैं। हमें दोहे, चौपाई, श्लोक और मंत्र याद आने लगते हैं जो हमारी मुरझाई हुई आशा-लता को हरी कर देते हैं। हे परमात्मन्, हमारी प्रार्थना है कि हममें ऐसी इच्छा उत्पन्न करो कि आपकी प्रदान की हुई इस अद्भुत शक्ति द्वारा हम संसार के शुभ विचारों को अपने अंदर जमा कर लें और त्याज्य विचारों को भूल जाएँ।

---

( २५ )

# जीभ पर कंट्रोल

'लाठी चार्ज' की तरह 'कंट्रोल' शब्द भी हमारी भाषा में प्रचलित हो गया है। अनाज पर, कपड़े पर, तेल पर कंट्रोल तो हम सुनते ही हैं, पर जीभ पर कंट्रोल की बात निराली ही है। मलाई, रबड़ी, खोया, पेड़ा जब नहीं मिल रहा है तब एक प्रकार से जीभ पर कंट्रोल शुरू ही हो गया। कचालू, गोलगप्पा, चूरन, लेमोनेड, आइसक्रीम यदि कंट्रोल में आ जाते तो कुछ शारीरिक और नैतिक लाभ भी होता। बीस-पच्चीस वर्ष पहले स्कूलों में जलपानादि का कोई प्रबंध नहीं था। संस्कृत पाठशालाओं में अब भी नहीं है। शहरों में शर्बत और सोडा-वाटर की दूकानें नहीं थीं, पर लोग अधिक हृष्ट-पुष्ट थे। देश में जीभ की चाट इन दिनों बढ़ती जाती है। एक धर्मग्रंथ में कलियुग का जो स्वरूप दिखाया गया है, उसमें उसकी जीभ बाहर निकली हुई है। चटारपन और गपबाज़ी का, जिनका इस युग में बोलबाला है, यह प्रतीक है। हर समय, हर जगह, हर एक चीज खाने लगना न स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और न शिष्टाचार की दृष्टि से। इस प्रकार का संयम जीभ के कंट्रोल से ही

हो सकता है। श्रीमती रमा बाई रानडे ने न्यायमूर्ति रानडे के जीवन-चरित में लिखा है कि भोजन के समय एक दिन घर में अंगूर आ गए। थोड़े से अंगूर रानडे ने भी खाए। रमा बाई ने कहा—'और खाइए, अंगूर तो बहुत अच्छे हैं।' जवाब मिला—'इसीलिये तो और नहीं खाता।'

रानडे बचपन से ही बड़े संयमी थे। उनकी माँ ने एक बार उन्हें एक पेड़ा दिया। मजदूरनी की लड़की को सामने खड़ा देख माँ ने आधा पेड़ा उन्हें और दिया कि यह उसको दे दो। रानडे आधा तो आप खा गए और पूरा पेड़ा उसको दे दिया।

भोजन स्वादिष्ट होता है तो हम लोग अधिक खा जाते हैं और पीछे पछताते हैं। पुराने लोग निश्चित दिनों पर उपवास करते थे अथवा नमक नहीं खाते थे। सन्मार्ग के अन्य साधनों में यह भी एक उपयोगी साधन था।

जीभ के कंट्रोल की दूसरी बात है, कम बोलना। इस ओर भी हम ध्यान नहीं देते। हमारे स्कूलों में कितना कोलाहल मचा रहता है, योरुप के स्कूलों में शांति विराजती है। सभा सोसाइटियों में एक तरफ काम चलता रहता है दूसरी तरफ अच्छे-अच्छे जिम्मेदार लोग भी आपस में बातचीत करते हैं।

१९२९ में जब मैं लंदन में था, मुक्ति फौज के बूथ महोदय की जन्म-शताब्दी क्रिस्टल पैलेस में मनाई गई थी। बड़ी भीड़ थी, परंतु साथ ही बड़ी शांति थी। दूसरे दिन समाचार पत्रों में पढ़ा कि उस उत्सव में एक लाख नर-नारी थे।

कई स्थानों में बिजली और पानी की कल रहती है। वहाँ जितनी बिजली और जितना पानी खर्च होता है, उतना टैक्स देना पड़ता है। नाप के लिये मीटर लगा रहता है। यदि किसी प्रकार का मीटर हमारी जीभ पर लग सके, जिससे हम यह जान लें कि हम कितना बोलते हैं और उसके लिये टैक्स देना पड़े तो शायद संसार में हमें सबसे अधिक टैक्स देना पड़ेगा। दूसरे रूप में हम टैक्स देते भी हैं। जितना ही अधिक हम बोलते हैं, उतना ही हमारी शारीरिक और नैतिक शक्ति का ह्रास होता है। जो आदमी हमेशा बड़बड़ाता रहता है, उसको सोचने का समय नहीं मिलता, वह अपनी बातों में नमक-मिर्च लगाने लगता है। इसलिये पुराने लोग समय-समय पर मौन का व्रत लिया करते थे। मेरी माता जी सबेरे आठ बजे तक मौन रहती थीं। महात्मा गांधी सप्ताह में एक दिन मौन रहते हैं। मैं एक साधु को जानता हूँ जो मौनी थे, परंतु सदा अपना समय पढ़ने-लिखने में

बिताया करते थे। अंतः जीभ के कंट्रोल के दो उपाय हैं—समय-समय पर उपवास और मौन। इन साधनों का अवलंबन दृढ़ता, नम्रता और भक्ति-भाव से करना चाहिए। ऐसा करने में घमंड और दिखावा नहीं होना चाहिए। इस अंश में आर्य-संस्कृति का आदर्श महान् था।

---

## ( २६ )

## सात्विक जीवन

सात्विकता तर्क द्वारा सिद्ध नहीं होती—वह जीवन द्वारा प्रकट होती है। यही कारण है कि परमहंस रामकृष्ण, स्वामी रामतीर्थ, आदि के साथ दो तीन दिन रहने मात्र से जो प्रभाव पड़ता था उसमें सैकड़ों धर्म-पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा अधिक स्थायित्व होता था। यह बात बहस की नहीं, अनुभव की है। क्या भोजन से सात्विकता का कुछ संबंध है ? अवश्य है। देखा गया है कि मांस न खानेवाली चिड़ियों के गले से मीठा स्वर निकलता है। प्याज-लहसुन खानेवाले मनुष्यों के पसीने से बदबू आती है। इसका यह मतलब नहीं है कि मांस, प्याज और लहसुन में गुण नहीं हैं। विचार करना है सात्विकता के दृष्टिकोण

से। अल्पाहारी और चटोर; धनलोलुप, अधिकार प्रिय और त्यागी; क्रोधी और शांतिप्रिय; आलसी और परिश्रमी अपनी अपनी छाप अपने परिवार और पड़ोसियों पर छोड़ जाते हैं। कहा जाता है कि स्वामी दयानंद को ६ बार विष दिया गया। पर जब जब विष देनेवाला पकड़ा गया उसे उन्होंने क्षमा कर दिया। कभी कभी विरोधी आवेश में उनको अपशब्द कह दिया करते थे। महर्षि हँसी में उनकी बात उड़ा देते थे। सात्विक जगत् में वही मनुष्य ऊपर उठ सकता है जो अपने व्यक्तित्व को पीछे रखता है और सिद्धांत को आगे, जो जीने के लिये भोजन करता है, भोजन के लिये नहीं जीता; कबीर के शब्दों में जो "राम" और "चाम" के द्वंद्व में "राम" के सामने नतमस्तक होता है और जो अपने हित की अपेक्षा दूसरों का कल्याण चाहता है। प्रोफेसर हक्सले ने, जो वैज्ञानिक और ऐग-नास्टिक ( नास्तिक ) थे, एक जगह एक उदाहरण दिया है। यदि किसी आदमी के सामने ऐसे समय कोई अतिथि आ जाय जब भोजन के लिये उतनी ही सामग्री रखी हो जितनी से केवल उसका ही पेट भर सकता हो, तो उसे क्या करना चाहिए ? आत्मरक्षा प्रकृति का पहला नियम है। इस नियम के अनुसार उस आदमी के लिये स्वाभाविक यही होगा कि वह पूरा भोजन स्वयं खा जाय,

पर सात्विकता के आधार पर उसको चाहिए कि कम से कम आधा भोजन अतिथि को भी खिलाए। साधारण मनुष्य और असाधारण मनुष्य में यही अंतर है। घर में आग लगने पर साधारण लोगों का भाग जाना स्वाभाविक है, पर असाधारण मनुष्य वह है जो वहीं ठहरकर आग बुझाने के लिये पानी लाता है और जब तक आग बुझ नहीं जाती वहीं डटा रहता है। सात्विकता मस्तिष्क का खेल नहीं है, हृदय की भावना है। इसमें धैर्य, शांति और विश्वप्रेम का होना आवश्यक है।

योरप में भी ऐसे अनेक संत हो गए हैं, विशेषकर रोमन कैथलिक देशों में, जिनमें ये सब गुण विद्यमान थे। इटली, फ्रांस और जर्मनी में उनके स्थापित किए हुए कई मठ हैं, जिनकी अन्य विशेषताओं के साथ बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनका निर्माण ऐसे स्थानों में किया गया है जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पड़ता है। वह हृदय को पवित्र बनाता है। यही कारण है कि हमारे ऋषियों के बनाए तीर्थ-स्थान ऐसे मनोरम हैं। ये ऋषियों के निवास-स्थान थे, जहाँ सात्विकता विराजती थी।

योरप के संतों में कुछ ऐसे भी हुए हैं जिनके हाथ पर या कंधे पर चिड़ियाँ आकर बैठ जाती थीं जिनकी

वाणी से ऐसे शब्द निकलते थे जो आज भी श्रद्धापूर्वक पढ़े जाते हैं।

सात्विकता का गुण केवल साधुओं में ही नहीं पाया जाता। उनमें तो होना ही चाहिए, क्योंकि उनका जीवन और उनके वचन गृहस्थों के लिये अनुकरणीय हैं। साधारण मनुष्यों में भी यदि आत्म-परीक्षा की आदत पड़ जाय तो वे साधुओं की अपेक्षा संसार की अधिक सेवा कर सकते हैं। गृहस्थी में पड़कर साधारण मनुष्य भी अपनी स्त्री, बच्चे और अथिति के लिये कुछ न कुछ त्याग करता ही है। इससे उसमें सहानुभूति, सहिष्णुता और धैर्य आ जाता है। इसलिये देखा गया है कि गृहस्थाश्रम का अनुभव प्राप्त करके जो लोग संन्यासी होते हैं उनमें ये गुण अधिक पाये जाते हैं। सात्विकता सत्यधर्म से प्राप्त होती है। अपने उपार्जित धन से प्राप्त भोजन करना चाहिए। अनाचार से प्राप्त धन सात्विकता को जला देता है। ईश्वर में अटल विश्वास होना चाहिए। भगवान सब गुणों का सागर है। जिस प्रकार बहती नदी में से कोई अपने लोटे में और कोई गागर या घड़े में पानी भर लाता है, उसी प्रकार मनुष्य को अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार दैवी गुण ग्रहण करने चाहिए। हम सब लोग दूसरों की परीक्षा लेने में सदा तत्पर रहते हैं। साधारण वार्तालाप में भी

दूसरों के दोष की चर्चा करते रहते हैं। हमें कभी कभी अपनी तरफ भी देखना चाहिए। थोड़ी देर के लिये एकांत में बैठकर अपनी आत्मा को शुद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। उसके लिये समय-समय पर मौन धारण करना बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। ऊपर संकेत किया जा चुका है कि सात्विकता साधना से प्राप्त होती है, तर्क से नहीं, दैनिक व्यवहार से प्रकट होती है, कोरे उपदेशों से नहीं।

---

# शरीर देव-मंदिर है।

१. संसार में भिन्न भिन्न संप्रदायों के देव-मंदिर हैं, जिनमें निराकार अथवा साकार पूजा होती है। इन्हें लोग सुंदर और स्वच्छ रखते हैं और पवित्र मानते हैं। उनके अंदर कूड़ा, कीचड़ या किसी प्रकार की गंदगी नहीं रहने देते। वहाँ जाकर भक्तों के मन में आध्यात्मिक भावना पैदा होती है। कोई गरदन झुकाता है, कोई हाथ जोड़ता है, कोई गाने लगता है, कोई फूल अथवा अन्य सुगंधित पदार्थों से उनका वायुमंडल स्वस्थ और आकर्षक बनाता है।

२. हमारा शरीर भी एक देव-मंदिर है। वह जीवात्मा के रहने का स्थान है। अविनाशी जीवात्मा, जो ईश्वर का अंश है, उसी में निवास करता है। मनुष्य के शरीर की बनावट ही इस बात की साक्षी दे रही है। उसका सिर सदा ऊपर रहता है जो उसके स्वाभाविक स्वाभिमान का द्योतक है। प्रति क्षण साँस का आना जाना उसको निरंतर अपने कर्ता के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने की याद दिलाता है। ऐसा देव-मंदिर पाकर मनुष्य को सदा ऊपर उठने का प्रयत्न करना चाहिए।

३. इसके लिये पहली आवश्यकता यह है कि वह अपने शरीर को स्वच्छ रखे। उसके हर एक हिस्से में छोटे-छोटे छेद हैं जिनमें से पसीना निकलता है, जिसके कारण उसका कपड़ा जल्दी-जल्दी मैला हो जाता है। इसलिये आवश्यक है कि वह निश्चित समय पर नहाता रहे और अपने कपड़े धोता या धुलवाता रहे। उसके अंदर से मल-मूत्र, थूक-कफ और मैल निकला करती है, जिसको रोकना हानिकारक है। मनुष्य को अपना पेट, मुख, नाक, कान अंदर और बाहर से साफ रखना चाहिये।

जल, वायु और भोजन के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता इसलिये यह देख लेना चाहिए कि ये तीनों हमें साफ और स्वच्छ मिलें। हवा के द्वारा साफ से साफ और बिल्कुल बंद जगह पर भी प्रतिदिन धूल पहुँचती रहती है। कुर्सी, चौकी आदि के नीचे और मेज के अंदर दराज में भी धूल पहुँच जाती है। इससे बचने के लिये झाड़ू और झाड़न से काम लेते चलना चाहिए। गर्द बड़ी घातक चीज है। उससे हमारा भोजन भी मैला और गंदा हो जाता है। इसलिये भोजन जालीदार अलमारी में सुरक्षित रखना चाहिए। नाक और मुँह के द्वारा धूल हमारे पेट में भी घुस जाती है।

हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारी गंदगी से

दूसरों को हानि तो नही पहुँचती। हम यदि हर जगह थूक दें या नाक साफ करें तो मक्खी के द्वारा वह गंदगी चारों तरफ पहुँच जायगी, इसलिये ऐसा नहीं करना चाहिए। खेतों में अथवा जहाँ उठौवा पाखाना हो वहाँ मल को मिट्टी से तुरंत ढक देना चाहिए।

हमारे पड़ोसी का शरीर भी तो देव मंदिर है। उसकी रक्षा करना भी उतना ही आवश्यक है जितना अपने शरीर की। हमारी भूल से हमारे प्यारे नगर को हानि न पहुँचनी चाहिए।

४. दूसरी आवश्यकता है युक्ताहार-विहार की। इस देव-मंदिर की रक्षा बिना संयम, नियंत्रण और महत्वाकांक्षा के नहीं हो सकती। शारीरिक संयम और मानसिक संयम दोनों आवश्यक हैं। ऋतु और आयु के अनुसार भोजन, नियमित निद्रा और व्यायाम आदि शरीर को स्वस्थ रखते हैं। पर मानसिक संयम शारीरिक संयम से कुछ कठिन है क्योंकि पहले पहल अच्छे काम की ओर कुछ अरुचि होती है। बुरे काम में पहले सुख मिलता है, पीछे कष्ट। मानसिक संयम के साधन ये हैं:—अध्ययन, स्वाध्याय, भगवद्भजन, कीर्तन, दान, प्राणिमात्र की सेवा, उत्कृष्ट ललितकला से प्रेम, एकांत में बैठकर आत्म-परीक्षा, संघर्ष में मत-भेद होते हुए भी हृदय-कलह से दूर रहना,

भेद न आने देना, इत्यादि। यह हुई संयम और नियंत्रण की बात, पर इतना साधन होने पर भी सबसे आवश्यक है महत्वाकांक्षा। बचपन में ही जिनके सामने ऊँचे आदर्श रखे जाते हैं वे अवश्य ऊँचे उठते हैं। पानी एक ओर जितनी ऊँचाई से नीचे उतारा जाता है, दूसरी ओर उतनी ही ऊँचाई तक चढ़ता भी है। प्रकृति का यह नियम नैतिक जगत में भी देखने में आता है। वाशिंगटन को अमेरिका के स्वतंत्र करने की, दादाभाई नौरोजी को भारत के स्वतंत्र करने की, महामना मालवीयजी को हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित करने की, भारतेंदु जी को हिंदी को 'राज दरबार' की भाषा बनाने की, स्वामी दयानन्द को आर्य संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने की महत्वाकांक्षा थी। इनमें से कुछ अपने ही जीवन में सफल हुए और कुछ जो बीज बो गए थे वे आज बहुत बड़े वृक्ष के रूप में दिखलाई दे रहे हैं। जीवन का कोई छोटा बड़ा ध्येय होना चाहिए, अन्यथा मनुष्य जीवन भर कोल्हू का बैल बना रह जाता है। इस अंश में साधारणतः स्त्रियों का जीवन आदर्श होता है यद्यपि उनका कार्यक्षेत्र सीमित रहता है। उनकी सहिष्णुता, उनकी सेवा-वृत्ति, उनकी दृढ़ता, उनकी हृदय की कोमलता, उनकी लज्जा, उनकी सुन्दरता, उनका आत्मिक बल, अनुकरणीय होता है। वे सत्यं, शिवं, सुन्दरं

की स्वभावतः उपासक होती हैं। वह मनुष्य अधम है जो उनकी ओर कुदृष्टि करता और उनका अपमान करता है। स्त्रियों का शरीर सचमुच देव मंदिर है।

शरीर देव-मंदिर है। इसको ध्यान में रखने से मनुष्य पाप से बचेगा और सदा उन्नति का मार्ग ग्रहण करेगा। वह मृत्यु से नहीं डरेगा। मनुष्य जिस प्रकार पुराना कपड़ा बदल कर नया पहन लेता है उसी प्रकार यह चोला छोड़ देता है।

---